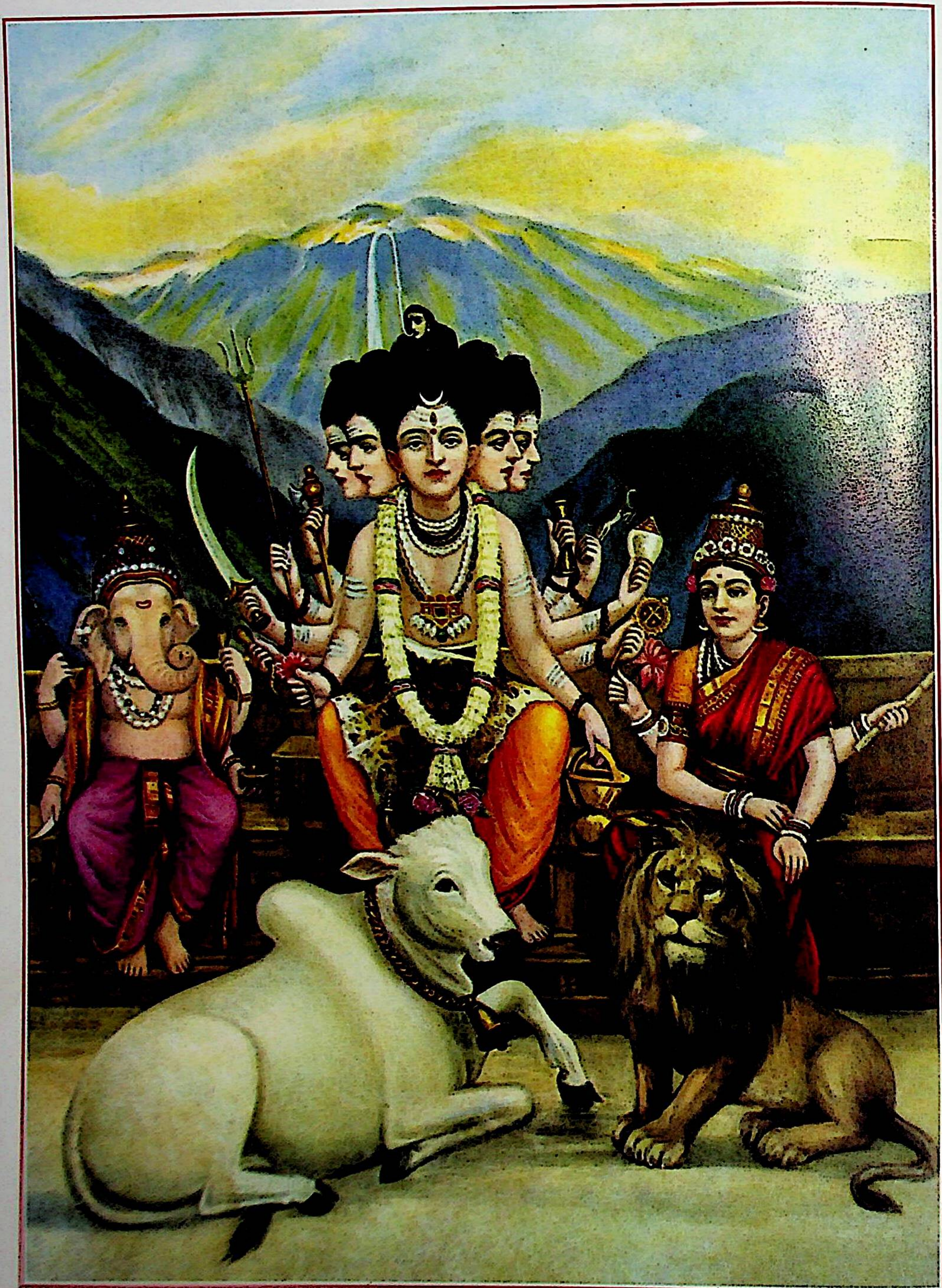
* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



इन्द्रद्वारा देवसेनाका स्कन्दको समर्पण



गौरी-गणेशसहित भगवान् शंकर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

यजापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३ | गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, जून २०१९ ई० | संख्या ६

पूर्ण संख्या ११११

जय शंकर-गौरी-गणपति

जय जय शंकर शूल-डमरुधर, जटा-जूटधर व्याली।
जय कैलास-निवासी त्रिनयन, जय रुद्राक्ष-सुमाली॥
जय गौरी जगजननि पार्वती, जयति दुरित-दुखहारी।
जय गणपति मूषकवाहन, जय विघ्नहरण सुखकारी॥

हे जटा-मुकुटमण्डित, सर्पाभरणभूषित-त्रिशूल-डमरूधारी भगवान् शंकर! आपकी जय हो, जय हो। रुद्राक्षकी सुन्दर माला धारण करनेवाले हे त्रिनेत्रधारी कैलासवासी! आपकी जय हो, जय हो। हे जगज्जननि गिरिराजनन्दिनी गौरी! आपकी जय हो, पापों और दुःखोंका निवारण करनेवाली! आपकी जय हो। हे मूषकवाहन गणेश! आपकी जय हो, हे विघ्नोंका शमन और सुखका सम्पादन करनेवाले! आपकी जय हो। [पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, जून २०१९ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क: वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ 09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—तुम अकेले आये हो और अकेले ही जाओगे। यहाँकी न तो कोई चीज तुम्हारे साथ जायगी और न कोई आत्मीय-स्वजन ही साथ जायगा।

याद रखो—आज घरमें तुम्हारी बड़ी आवश्यकता है। तुम भी ऐसा मानते हो कि मुझसे ही सारा काम चलता है, मेरे न रहनेपर काम कैसे चलेगा। पर तुम्हारे मरते ही कोई-न-कोई व्यवस्था हो जायगी और कुछ दिनों बाद तो तुम्हारे अभावका स्मरण भी नहीं होगा।

याद रखो—जैसे आज तुम अपने पिता-पितामह आदिको भूल गये हो और अपनी स्थितिमें मस्त हो, ऐसे ही तुम्हारी सन्तान भी तुम्हें भूल जायगी।

याद रखो—तुम व्यर्थ ही आसक्ति तथा ममताके जालमें फँस रहे हो और मानव-जीवनके असली ध्येयको भूलकर, जिससे एक दिन सारा सम्बन्ध छूट जायगा और कभी उसकी याद भी नहीं आयेगी, उसीमें मनको फँसाकर, जीवनको अधोगतिकी ओर ले जा रहे हो।

याद रखो—तुम पहले कहीं थे ही, वहाँ तुम्हारे माता-पिता, घर-द्वार, पत्नी-पुत्र आदि भी होंगे ही। आज तुम्हें जैसे उनकी याद ही नहीं है, वे किस हालतमें कहाँ हैं, इसका पता लगानेकी भी कभी चिन्ता मनमें नहीं होती, वैसे ही यहाँसे चले जानेपर दूसरे जन्ममें यहाँके सब कुछको भूल जाओगे।

याद रखो—सम्बन्ध अनित्य और काल्पनिक होनेपर भी जबतक तुम्हारी इसमें ममता और आसक्ति है, तबतक तुम्हारी कामना-वासना नहीं मिट सकती एवं जबतक कामना-वासना रहेगी, तबतक दुष्कर्म भी बनते ही रहेंगे और जबतक दुष्कर्म बनेंगे, तबतक सुखका मुख कभी भी नहीं दीखेगा।

याद रखो—जबतक तुम यह सोचते रहोगे कि अमुक परिस्थिति आनेपर भगवान्‌का भजन करूँगा, तबतक भजन बनेगा ही नहीं, परिस्थितिकी कल्पना बदलती रहेगी। अतएव तुम जिस परिस्थितिमें हो, उसीमें भजन आरम्भ कर दो। भजन होने लगनेपर परिस्थिति आप ही उसके अनुकूल हो जायगी।

याद रखो—भजनमें मन लगनेपर संसारके बन्धन स्वयमेव शिथिल हो जायँगे। भगवान्‌में ममता और आसक्ति हो जायगी, तब घर-परिवार, धन-सम्पत्ति, यश-मान आदिकी हथकड़ी-बेड़ियाँ अपने-आप कट जायँगी। फिर इसके लिये कोई अलग प्रयास नहीं करना पड़ेगा।

याद रखो—जगत्‌से भागनेकी चेष्टा करोगे, इसे छोड़ने जाओगे तो और भी जकड़ोगे। इसे छोड़नेका प्रयत्न छोड़कर भगवान्‌में लगनेका—सब प्रकारसे लगनेका प्रयत्न करो। भगवान्‌की रूप-माधुरीकी जरा-सी झाँकी मिलते ही भोगोंके रूप-सौन्दर्यका—सुख-विलासका स्वप्न तत्काल भंग हो जायगा। फिर इस ओर झाँकनेको भी मन नहीं करेगा।

याद रखो—मानव-जीवन अजगरोंकी भाँति लम्बे कालतक नहीं रहता। फिर इस समय तो बालक तथा तरुण भी सहसा मृत्युके शिकार हो जाते हैं। अतएव बुढ़ापेकी प्रतीक्षा न करके तुरंत भजनमें लग जाओ। यह अवसर हाथसे निकल गया तो पीछे सिवा पछतानेके कोई भी उपाय नहीं रह जायगा।

याद रखो—भगवान्‌ने तुमपर कृपा करके संसार-सागरसे तरने और भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करनेके सारे साधन सुलभ कर दिये हैं। इन साधनोंको पाकर भी यदि तुम असावधान रहोगे और इनसे लाभ नहीं उठाओगे तो तुम्हारे समान मूर्ख और कौन होगा?

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

कार्तिकेयद्वारा देवसेनाका वरण



भगवान् शिव और पार्वती कैलासपर निवास कर रहे थे। एक दिन माता पार्वती एक सरोवरके तटपर गयीं। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। उसी समय उन्होंने देखा कि कमल-पत्रमें जल लेकर छः कृत्तिकाएँ अपने घर जाने ही वाली हैं।

भगवती उमाने कहा—'देवियो! अगर आप लोगोंको कष्ट न हो तो कमल-पत्रमें रखा हुआ जल मैं भी पीना चाहती हूँ।' कृत्तिकाओंने कहा—'देवि! यह जल पीनेके पहले आपको हमारी एक शर्त माननी पड़ेगी; वह शर्त यह है कि इस समय आपके गर्भमें जो पुत्र है, वह हमारा भी पुत्र माना जाय।' 'ऐसा ही होगा'—पार्वतीजीने तत्काल वचन दे दिया। कृत्तिकाएँ परम प्रसन्न हुईं। उन्होंने कमल-पत्रमें रखा थोड़ा-सा जल उमादेवीको भी दे दिया। भगवती पार्वतीने कृत्तिकाओंके साथ उस मधुर जलका पान किया। जल पीते ही उनकी दाहिनी कोखसे एक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। उसके छः मुख थे। उसके सुन्दर हाथोंमें शूल, शक्ति और अंकुश सुशोभित थे। सरकण्डोंके वनमें जन्म ग्रहणकर वह बालक दिनों-दिन बढ़ने लगा। वह अपने छः मुखोंसे छहों कृत्तिकाओंका दूध पीने लगा। कृत्तिकाएँ भी माताकी तरह उसका पालन-पोषण करने लगीं। इस प्रकार कृत्तिकाओंद्वारा पालित होनेके कारण वह बालक आगे चलकर कार्तिकेयके नामसे विख्यात हुआ। देवताओंने कार्तिकेयको नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये और उनकी विविध प्रकारसे पूजा की।

देवताओंने भगवान् शिवसे अनुरोध किया—'प्रभो! अब देवताओंका दुःख दूर करनेके लिये आप कुमार कार्तिकेयको आज्ञा दीजिये।' शिवजीने कुमार कार्तिकेयको देवताओंको सौंप दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवगण! तुम शंकरजीके पुत्रको आगे करके युद्धके लिये उद्यत हो जाओ। संग्राममें दैत्योंको जीतकर निश्चय ही विजयी होगे।' यह आकाशवाणी सुनकर सब देवता युद्धके लिये उत्सुक हो गये। उसी समय कुमार कार्तिकेयका वरण करनेके लिये मृत्युकन्या 'देवसेना' वहाँ आयी। कुमारने इन्द्रके कहनेसे उसे अंगीकार किया। तबसे कुमार कार्तिकेय देवताओंके सेनापति हुए। इन्द्रने तारकासुरके पास अपना दूत भेजा। दूतने तारकासुरसे कहा—'असुरराज! देवराज इन्द्र तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं। तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

कुछ ही समयमें कार्तिकेयने देवसेनाके साथ तारकके नगर पहुँचकर उसे चारों ओरसे घेर लिया। दैत्यराज तारकासुर भी अपनी सेनाके साथ युद्धभूमिमें आ डटा। भयानक युद्ध छिड़ गया। कार्तिकेयका आश्रय पाकर देवता प्रबल हो गये थे। वे असुरोंका संहार करने लगे।

यह देखकर तारकासुरने कार्तिकेयके ऊपर अपने वज्रतुल्य मुद्‌गरका प्रहार किया। कार्तिकेयने अपने चक्रसे उसे बीचमें ही नष्ट कर दिया। पार्वतीनन्दनके सामने असुरोंके सारे अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गये। असुरोंकी सेना तितर-बितर हो गयी। पृथ्वीपर रक्तकी सरिता बहने लगी। अमित तेजस्वी कुमार कार्तिकेयने तारकासुरपर अपनी अमोघ शक्तिका प्रहार किया। वह शक्ति तारकको छातीमें प्रवेश कर गयी। उसकी छाती फट गयी। दैत्य तारकका निर्जीव शरीर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

तारकासुरके वधसे पृथ्वीका पाप मिट गया। देवगण शिव-पुत्रकी स्तुति करने लगे। उनकी प्रसन्नताका पारावार न था। चारों तरफ कुमार कार्तिकेयकी जय-जयकार होने लगी। [महाभारत वनपर्व, स्कन्दपुराण]

महापुरुषोंके प्रति किये गये अपराधका परिणाम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न एक सद्गुणसम्पन्न सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण थे। उन्हींके यहाँ जडभरतका जन्म हुआ था। ये 'भरत' नामसे प्रसिद्ध थे; लोकमें जड़वत् विचरा करते थे, इसलिये लोग इनको 'जड़भरत' कहते थे। कुछ बड़े होनेपर उनके पिताने उनका शास्त्रानुसार उपनयन-संस्कार भी करा दिया। उन्होंने इनको विद्या पढ़ानेकी बहुत चेष्टा की, किंतु ये जान-बूझकर पढ़ना नहीं चाहते थे, इसलिये घरवाले इन्हें पढ़ा नहीं सके। वेद पढ़ानेकी बात तो दूर रही, केवल एक गायत्री-मन्त्र भी नहीं पढ़ा सके। थोड़े दिनों बाद उनके पिता परलोक सिधार गये, तब उनकी माता उनको अपनी सौतको सौंपकर अपने पतिके साथ सती हो गयी। उसके बाद इनकी बड़ी माताके पुत्रोंने इनको पढ़ानेका आग्रह छोड़ दिया और इनकी उपेक्षा-सी कर दी।

तदनन्तर जड़भरत उन्मत्तकी भाँति रहने लगे। उन्हें मानापमानका कुछ भी विचार नहीं था। लोग उन्हें पागल, मूर्ख और बधिर कहते तो वे उसे स्वीकार कर लेते थे। कोई भी उनसे काम कराना चाहते तो उनके इच्छानुसार कर दिया करते और उसके बदलेमें जो कुछ भी अच्छा-बुरा भोजन मिल जाता, वही खा लिया करते। उन्हें अन्य किसी कारणसे उत्पन्न न होनेवाले स्वत:सिद्ध केवल विज्ञानानन्दस्वरूप आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी, इसलिये मानापमान, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंसे होनेवाले सुख-दुःख आदिमें उन्हें देहाभिमानकी स्फूर्ति नहीं होती थी। वे सरदी, गरमी, वर्षा और आँधीके समय साँड़के समान दिगम्बर पड़े रहते। उनके सम्पूर्ण अंग स्थूल और पुष्ट थे। उनका ब्रह्मतेज पृथ्वीपर लोटने, उबटन न मलने और स्नान न करनेके कारण शरीरपर धूलि जम जानेसे धूलिसे ढके हुए महामूल्य मणिके समान छिपा हुआ था। वे अपनी कमरमें मैला-कुचैला कपड़ा बाँधे रहते थे, उनका यज्ञोपवीत भी बहुत मैला हो गया था। इसलिये अज्ञानीलोग इन्हें 'यह कोई द्विज है', 'यह अधम ब्राह्मण है' इस प्रकार कहकर तिरस्कार किया करते थे, किंतु वे इसकी कोई परवा न करके स्वच्छन्द विचरा करते थे।

इस तरह दूसरोंकी मजदूरी करके पेट पालते देख इनके भाइयोंने इनको खेतकी क्यारियाँ ठीक करनेमें लगा दिया तो वे उस कार्यको भी करने लगे। परंतु उन्हें इस बातका कुछ भी ध्यान नहीं था कि उन क्यारियोंकी भूमि समतल है या ऊँची-नीची, अथवा वह छोटी है या बड़ी। उनके भाई उन्हें चावलकी कनी, भूसी, घुने हुए उड़द अथवा बरतनोंमें लगी हुई अनाजकी खुरचन आदि जो कुछ भी दे देते, उसीको वे अमृतके समान समझकर खा लिया करते थे।

एक समय एक डाकुओंके सरदारने पुत्रकी कामनासे भद्रकालीको मनुष्यकी बलि देनेका निश्चय किया। दैववश उसके नौकरोंने आंगिरसगोत्रीय ब्रह्मकुमार जड़भरतको इसके लिये पकड़ लिया और रस्सियोंसे बाँधकर उन्हें देवीके मन्दिरपर ले आये। फिर रस्सी खोलकर उन्हें विधिपूर्वक स्नान करा वस्त्राभूषण पहनाये और नाना प्रकारके चन्दन, माला, तिलक आदि लगाकर विभूषित किया। इसके बाद भोजन कराकर धूप, दीप, माला, खील, पत्ते, अंकुर, फल और नैवेद्य आदि सामग्रीके सहित बलिदानकी विधिसे पूजा करके गान, स्तुति और मृदंग-ढोल आदिका महान् शब्द करते हुए उनको भद्रकालीके सामने नीचा सिर कराकर बैठा दिया। तदनन्तर दस्युराजके तामसी पुरोहितने उस नर-पशुके रुधिरसे देवीको तृप्त करनेके लिये देवी-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित एक तेज तलवार उठायी। उन साक्षात् ब्रह्मभावको प्राप्त हुए, वैरहीन, समस्त प्राणियोंके सुहृद् ब्रह्मर्षिकुमार जड़भरतकी बलि देते देखकर देवी भद्रकालीके शरीरमें जड़भरतके दुःसह ब्रह्मतेजसे दाह होने लगा, और वे एकाएक मूर्ति चीरकर प्रकट हो गयीं। उन्होंने क्रोधमें पुरोहितके हाथसे अभिमन्त्रित तलवारको छीन लिया और उसीसे उन सारे मनुष्यघातक पापियोंके सिर उड़ा दिये। सच है, महापुरुषोंके प्रति किया हुआ अत्याचाररूप अपराध, इसी प्रकार ज्यों-का-त्यों अपने ही ऊपर पड़ता है।

शबरी एवं गीधराजकी महानता

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

मानसमें ऐसे भक्त तो हैं, जो प्रभुको एक क्षणके लिये भी नहीं भुलाते, जैसे—भरतजी, हनुमान्‌जी एवं अनेक मुनिगण। किंतु ऐसे विलक्षण भक्त भी हैं, जैसे—शबरी और गीधराज जटायु, जिनकी स्मृति प्रभु एक क्षणके लिये भी नहीं भुला पाते। युद्ध विजयकर भगवान् रामके अयोध्या लौट आनेके पश्चात् गोस्वामीजी जो वर्णन करते हैं, उसमें यह बात बार-बार सामने आती है।

सामान्यतया जब कोई व्यक्ति प्रवाससे घर लौटता है तो लोग जिज्ञासावश उससे यह पूछते ही हैं कि 'आपने वहाँ क्या-क्या देखा, किन-किन लोगोंसे मिले तथा आपको कौन-कौनसे विशिष्ट अनुभव हुए? भगवान् राम तो चौदह वर्षोंकी लम्बी अवधिके बाद अयोध्या लौटे थे। भगवान् रामकी सहृदयताके कारण अयोध्यामें उनके अनगिनत मित्र थे। वे सब भगवान् रामसे जब इसी तरहके प्रश्न करते थे और भगवान् राम जो उत्तर देते थे, उसे सुनकर उन सबको बड़ा आश्चर्य होता है; क्योंकि भगवान् राम बार-बार एक ही बात दोहराते रहते थे। इस सन्दर्भमें 'गीतावली' और 'कवितावली'में बड़ा अद्भुत वर्णन पढ़नेको मिलता है।

भगवान् रामकी इस यात्रामें उनकी भेंट उस समयके विश्वके अग्रणी और महान् ऋषि-मुनियोंसे होती है, जैसे—महर्षि भरद्वाजजी, महर्षि वाल्मीकिजी, महर्षि अत्रिजी, महर्षि अगस्त्यजी। प्रभु यदि चाहते तो बड़े विस्तारसे इन सब महापुरुषोंसे मिलनेकी घटनाओंका वर्णन कर सकते थे, पर गोस्वामीजी कहते हैं कि मित्रोंके बार-बार पूछनेपर भी प्रभु दण्डकवन और चित्रकूटमें इन महानुभावोंके साथ अपने मिलन और संवादकी चर्चा भूलकर भी नहीं करते, अपितु दो ही पात्रोंकी चर्चा वे बार-बार करते हैं। गोस्वामीजी लिखते हैं कि—

मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरीकी बरनत प्रीति सुहाई॥

(विनयपत्रिका १६५। ३)

प्रभु कहते हैं कि एक तो गीधराजजी मिले और दूसरी शबरीजी मिलीं। भगवान् गीधराजजीके वात्सल्य और भक्तिमती शबरीजीके फलोंके स्वाद और रसको एक क्षणके लिये भी नहीं भूल पाते।

गीधराजके सम्बन्धमें विदित ही है कि जब रावण सीताजीका अपहरणकर उन्हें अपने साथ ले जा रहा था, उस समय उन्होंने रावणको चुनौती दी और उससे युद्ध किया। प्रारम्भमें गीधराजने रावणको कुछ समयके लिये मूर्छित कर दिया, पर अन्तमें रावणके द्वारा उनके पंख काट दिये जानेपर वे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इसके पश्चात् प्रभु स्वयं गीधराजके पास पहुँचे और उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया। बादमें वे भगवान् रामकी गोदमें सिर रखकर अपना शरीर छोड़ देते हैं। गीधराजजीने सीताजीकी रक्षाके प्रयासमें अपना शरीर अर्पित कर दिया और धन्य हो गये। प्रभु राम गीधराजजीको पिताके समान सम्मान देते हैं और उनकी क्रिया अपने हाथोंसे करते हैं। भगवान् रामने उन्हें अपना धाम प्रदान किया और कहा कि यदि आप मेरे धाममें जा रहे हैं तो यह मेरी किसी कृपा या उदारताके कारण नहीं अपितु—

तात कर्म निज तें गति पाई॥

(रा०च०मा० ३। ३१। ८)

आपने जो महानतम कार्य किया है, उस कर्मका ही यह परिणाम है। परोपकारके लिये आपने अपने शरीरको विनष्ट हो जाने दिया, इसलिये आपसे बढ़कर महान् और कौन होगा! इस प्रकार गीधराजजी भगवान् रामके पिताका स्थान पा गये।

शबरीजीने सीताजीको कभी नहीं देखा था; क्योंकि भगवान् राम लक्ष्मणजीके साथ शबरीजीके आश्रममें श्रीसीताजीसे वियोग होनेके बाद ही पधारते हैं। आश्चर्य होता है कि जिन शबरीजीने सीताजीके दर्शनतक नहीं किये हैं, भगवान् राम उनसे सीताजीका पता और उन्हें पुनः पानेका उपाय पूछते हैं! वे कहते हैं—

हे भामिनि! मेरी प्रिया जनकनन्दिनीका हरण

हो गया है। उन्हें ढूँढ़नेके लिये ही मैं इस समय वनमें भ्रमण कर रहा हूँ। क्या आप उनकी सुधि जानती हैं? और यदि आपको यह ज्ञात है तो आप मुझे बतायें कि उन्हें पुनः प्राप्त करनेका उपाय क्या है?

भगवान् रामके प्रश्नको सुनकर शबरीजीको बड़ा संकोच होता है। वे कहती हैं—'प्रभु! आप तो सब कुछ जानते हैं, पर जब आपने प्रश्न किया है तो फिर इस दृष्टिसे मेरा यह कर्तव्य बन जाता है कि इस विषयमें मैं कुछ कहूँ! प्रभु! मेरा आपसे अनुरोध है कि आप कृपा करके पम्पासरकी यात्रा करें, जहाँ आपकी सुग्रीवसे मित्रता होगी और उसके बादकी सारी बातें उनके द्वारा आपको ज्ञात होंगी।' भगवान् राम शबरीजीके इस कथनको स्वीकारकर पम्पासरकी यात्रा करते हैं, जहाँ ऋष्यमूकपर्वतके निकट उनकी हनुमान्‌जीसे भेंट होती है और हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे उनका सुग्रीवजीसे मिलन होता है, मित्रता होती है।

यद्यपि आगेके प्रसंगमें हनुमान्‌जीकी ही भूमिका प्रमुख है, पर शबरीजीने तो सुग्रीवजीका ही नाम लिया था, इसलिये भगवान् राम शबरीजीके इस वाक्यको कितना महत्त्व देते हैं, यह बात बादके प्रसंगोंमें स्पष्ट रूपसे सामने आ जाती है। आगे चलकर सुग्रीव जब अपनी आत्मकथा सुनाते हैं तो इसे सुनकर लक्ष्मणजी बहुत प्रसन्न नहीं दिखायी देते; क्योंकि उनकी आत्मकथामें बार-बार उनकी दुर्बलता, कायरता तथा अनेकानेक कमियोंका ही संकेत मिलता है। लक्ष्मणजीको विशेष रूपसे सुग्रीवकी यह बात अच्छी नहीं लगती कि सुग्रीवने सीताजीका हरण होते हुए देखा, विलाप करते हुए देखा और सीताजीने उनकी ओर देखकर कुछ आभूषण और वस्त्र-खण्ड भी गिराये, पर वे हाथपर हाथ धरे बैठे रहे! एक अबलाको ऐसी स्थितिमें देखकर भी उन्होंने उनकी कोई सहायता नहीं की। वे आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे—'ऐसे कायर व्यक्तिको प्रभुने क्यों इतना सम्मान दे दिया और अपना मित्र बना लिया?'

लक्ष्मणजीसे रहा नहीं गया। उन्होंने पूछ दिया—'प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कि सुग्रीवमें आपको ऐसी कौन-सी विशेषता दिखायी पड़ी कि वह आपकी मैत्रीका अधिकारी बन गया?' प्रभुने कहा—'लक्ष्मण! क्या तुम इस बातको भूल गये कि भक्तिमती शबरीसे मेरा मिलन हुआ था तो उन्होंने क्या कहा था? उन्होंने मेरे पूछनेपर यही तो कहा था कि—

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥

(रा०च०मा० ३।३६।११)

सुग्रीवसे मित्रता होगी। अतः मैं तो सुग्रीवसे मित्रता करके शबरीजीके आदेशका पालन कर रहा हूँ। जब शबरीजी सुग्रीवको इतना महत्त्व देती हैं, तो फिर मेरे लिये उससे मित्रता करनेसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ कर्तव्यपालनका कार्य हो ही नहीं सकता। लक्ष्मणजीको मौन हो जाना पड़ा। उन शबरीजीकी विशेषताओंका क्या वर्णन किया जा सकता है, जिसके अनुरोधको प्रभु आज्ञा मानकर उसका पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं?

शबरीजीमें नौ भक्तियाँ विद्यमान हैं, पर हम उनका नामतक नहीं जानते। 'शबर' जातिमें उनका जन्म हुआ था, इसलिये लोग उन्हें 'शबरी' कहने लगे, जिनका नामतक ज्ञात नहीं और जाति-कुलकी दृष्टिसे भी विशिष्ट न होनेपर भी, शबरी 'मानस'की एक दिव्य और विलक्षण नारीपात्र हैं, जो प्रभुकी शक्तिरूपा श्रीसीताजीको पानेका उपाय बताती हैं।

शबरीजीमें भक्तिकी परिपूर्णता तो है ही, वे दिव्य योगसम्पन्न भी हैं। अन्य ऋषि-मुनियोंका भी भगवान् रामसे मिलन होता है, और बादमें प्रभु सबसे विदा भी लेते हैं, पर शबरीजी प्रभुसे मिलने और उनसे संवादके बाद फिर प्रभुसे अलग नहीं हुईं। गोस्वामीजी कहते हैं कि सच्चे योगकी सिद्धि तो शबरीजीके ही जीवनमें दिखायी देती है। वे योगाग्निसे अपना शरीर त्याग देती हैं, और उस पदको पा लेती हैं, जहाँ कभी वियोग न होकर शाश्वत मिलन-ही-मिलन है। [प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

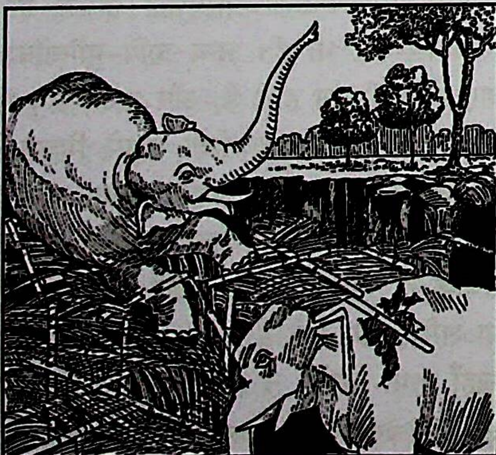
संन्यासी और स्त्री

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

दूसरोंको धर्मका उपदेश देनेवाले लोग भी यदि स्वयं ही स्वधर्मका पालन न करें तो वे अपना और दूसरोंका क्या उद्धार कर सकते हैं ? यदि कोई मनुष्य वीतराग संन्यासीका बाना धारण करके भी स्त्रियोंसे शरीरका स्पर्श कराता है, तो वह न केवल स्वधर्मसे भ्रष्ट होता है, अपितु अपने संसर्गमें आनेवाले अन्य स्त्री-पुरुषोंको भी पापका भागी बनाता है। वे स्त्रियाँ भी अपनेको नरकमें ले जा रही हैं, जो संन्यासीके अंगका स्पर्श करके उसे तो धर्मभ्रष्ट करती ही हैं, स्वयं भी परम पवित्र सतीधर्मसे गिरकर दूसरोंके लिये बुरा आदर्श उपस्थित करती हैं। शास्त्रोंने संन्यासीको सदा अकेला रहनेकी सलाह दी है—**'एकश्चरेन्महीमेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः।'** (श्रीमद्भागवत ११।१८।२०) अर्थात् 'संन्यासी अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर संगरहित हो अकेला इस पृथ्वीपर विचरे।' **'एकारामः'** (याज्ञ० स्मृति ३।५८) अकेलेमें ही सुखका अनुभव करनेवाला हो। दक्षस्मृतिमें लिखा है—

एको भिक्षुर्यथोक्तश्च द्वावेव मिथुनं स्मृतम्।
त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते॥

'संन्यासी यदि अकेला रहे तो वास्तवमें संन्यासी है। दो होनेपर यह मिथुनयुक्त समझा जाता है। तीन संन्यासी एकत्र हो जायँ तब तो पूरा गाँव ही बस गया और इससे अधिक इकट्ठे हों तो वह उनके लिये एक बड़ा-सा नगर समझना चाहिये।'



संन्यासीके लिये यह स्पष्ट आदेश है कि वह स्त्रीसे दूर रहे। जीती-जागती स्त्रीकी तो बात ही क्या है, काठकी बनी हुई युवती स्त्रीकी प्रतिमाका भी पैरसे भी स्पर्श न करे। जैसे हाथी काठकी हथिनीके अंगका स्पर्श करके बँध जाता है, वैसे ही वह संन्यासी बन्धनमें पड़ सकता है।

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।
स्पृशन् करीव बद्ध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः॥
(श्रीमद्भा० ११।८।१३)

नारद-परिव्राजकोपनिषद्‌में संन्यास-धर्मकी बड़े विस्तारसे व्याख्या की गयी है। उसमें लिखा है—

माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति।
तस्माद् दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत्॥
सम्भाषणं सह स्त्रीभिरालापं प्रेक्षणं तथा।
नृत्यं गानं सहासं च परिवादांश्च वर्जयेत्॥
(६।३१-३२)

'मनुष्य मदिराको तो पीनेपर मतवाला होता है, परंतु तरुणी स्त्रीको देखकर ही उन्मत्त हो उठता है। इसलिये दर्शनमात्रसे विषका-सा प्रभाव डालनेवाली नारीको संन्यासी दूरसे ही त्याग दे। स्त्रियोंके साथ बातचीत करना, उनके पास सन्देश भेजना, उनकी ओर देखना, नाचना, गाना, हास-परिहास करना तथा परायी निन्दा करना—संन्यासी इन सबका त्याग कर दे।'

नारदजीने यहाँतक कहा है कि—

न सम्भाषेत् स्त्रियं काञ्चित् पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि॥
एतच्चतुष्टयं मोहात् स्त्रीणामाचरतो यतेः।
चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात् प्रणश्यति॥
(४।३-४)

'संन्यासी किसी भी स्त्रीसे बातचीत न करे। पहलेकी देखी हुई किसी स्त्रीका स्मरणतक न करे। उनकी चर्चासे भी दूर रहे तथा स्त्रियोंका चित्र भी न देखे। सम्भाषण, स्मरण, चर्चा तथा चित्र-दर्शन—स्त्रीसम्बन्धी इन चार बातोंका जो मोहवश आचरण करता है, उसके

चित्तमें अवश्य विकार उत्पन्न होता है और उस विकारसे वह धर्मभ्रष्ट होनेके कारण नष्ट हो जाता है।'

इसी प्रकार स्त्रीकी शारीरिक और मानसिक स्थितिपर विचार करते हुए धर्मशास्त्रोंने उसे सदा अपने गुरुजनोंके अधीन रहनेकी सलाह दी है, वह कभी स्वतन्त्रतापूर्वक कोई काम न करे—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित् कार्यं गृहेष्वपि॥

(मनु० ५।१४७)

स्त्री बचपनमें पिताके, युवावस्थामें पतिके और वृद्धावस्थामें, यदि पति न रहे तो पुत्रोंके अधीन रहे; स्वतन्त्र न रहे—

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥

(मनु० ५।१४८)

पति ही उसे इहलोक और परलोकमें सुख देनेवाला है—

सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः।

(मनु० ५।१५३)

स्त्रीको अपने पतिकी देवबुद्धिसे सेवा करनी चाहिये।

उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः।

(मनु० ५।१५४)

स्त्रियोंके लिये पतिसे अलग स्वतन्त्ररूपसे कोई यज्ञ, व्रत और उपवास करनेकी विधि नहीं है, वह पतिकी जो सेवा करती है, उसीसे स्वर्गलोकमें सम्मानित होती है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

(मनु० ५।१५५)

पति ही स्त्रियोंका गुरु है, इस विषयमें शास्त्रोंमें बहुत-से प्रमाण मिलते हैं; वे सभी यथार्थ एवं मान्य हैं। प्रातःस्मरणीया भगवती सीताजीने भी पतिको गुरु कहा है—**'यो मे भर्ता स मे गुरुः।'** **'विदितं तु ममाप्येतद् यथा नार्याः पतिर्गुरुः।'** पतिकुलमें रहना ही स्त्रियोंके लिये गुरुकुलमें वास है—**'पतिसेवा गुरौ वासः।'** मनुजीने तो यहाँतक कह दिया है कि पति, पिता, भाई अथवा पुत्रसे पृथक् अकेली विचरनेवाली स्त्री अपने दोनों कुलोंको कलंकित कर देती है—**'गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले।'**

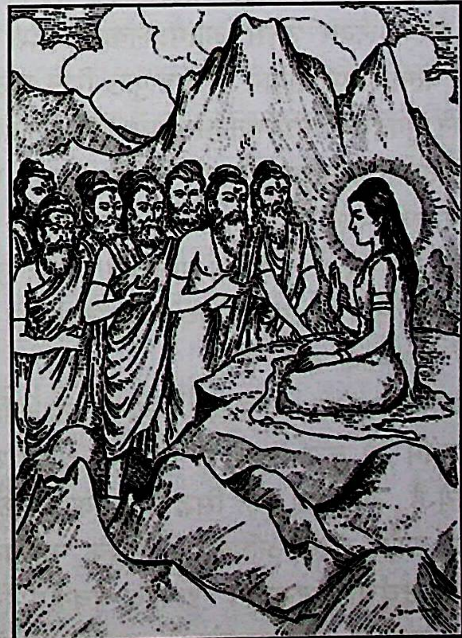
आजकल स्त्रियोंका आत्मकल्याण करनेके नामपर उन्हें उनके धर्मसे गिराकर भ्रष्ट किया जाता है। शास्त्र कहता है—पुरुष अत्यन्त कष्ट सहन करके बड़े-बड़े धर्म और यज्ञके द्वारा जिस पुण्यलोकको प्राप्त करता है, उसे ही स्त्री केवल पतिसेवासे पा लेती है, इसलिये स्त्रियाँ धन्य हैं—

योषिच्छुश्रूषणाद् भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः॥

(विष्णुपु० ६।२।२८-२९)

कहीं भी शास्त्रमें ऐसा विधान नहीं है कि स्त्री पातिव्रत्य धर्म छोड़कर किसी संन्यासीकी चरणसेवा करके आत्मज्ञानका उपदेश ले।

तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥



पार्वतीजीके सप्तर्षियोंके प्रति इस कथनका यह अर्थ

नहीं कि पतिकी आज्ञाकी अवहेलना करके स्वयं बनाये हुए किसी दम्भी गुरुकी आज्ञासे नारी स्वधर्म छोड़ दे और संन्यासीके साथ विचरती रहे। उपर्युक्त चौपाईमें सतीशिरोमणि सतीके अविचल पति-प्रेमका उदाहरण है। नारदने यही तो कहा था कि 'भगवान् महेश्वरको पतिरूपमें पानेके लिये पार्वती तपस्या करे।' इससे 'पति' की उच्चता और दुर्लभता सिद्ध होती है। जैसे कोई भक्त कहे कि हम भगवान्‌के कहनेसे भी उनकी भक्ति नहीं छोड़ेंगे तो इस कथनसे उसकी अतिशय भक्ति ही सूचित होती है, न कि भगवद्द्रोह। इसी प्रकार सतीने कहा—मैं महेश्वरके कहनेसे भी उनके प्रति प्रेम तथा उनकी प्राप्तिके लिये साधन नहीं छोड़ूँगी। सप्तर्षिलोग भी तो गुरु बनकर ही आये थे और महेश्वरमें जो प्रेम है, उसे छोड़नेका सदुपदेश दे रहे थे; परंतु पार्वतीने उनको दूरसे ही नमस्कार किया; पतिप्रेमके विरुद्ध कोई उपदेश मान्य नहीं। ***'बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी।'***का अडिग निश्चय सुनकर वे महर्षिगण चलते बने। फिर सतीको उपदेश देनेका साहस नहीं किया; उलटे उस पतिव्रताकी स्तुति करके गये। भगवद्भक्तिमें स्त्री-पुरुष सभीका अधिकार है, पर उसमें पतिसेवा छोड़नी नहीं पड़ती। पतिमें ही भगवद्भाव करके सेवा की जाती है।

शास्त्रोंमें गुरुकी बड़ी महिमा है। पुरुषको ही गुरुकी शरण लेकर उनसे आत्मज्ञानका उपदेश लेना चाहिये। पत्नीको पतिसेवासे ही सब कुछ मिल जाता है। पतिव्रताने सूर्यदेवको स्तम्भित कर दिया था। अनावृष्टिके समय पतिव्रता अनसूयाने अपने सतीत्वसे जल प्रकट करके प्रजाकी रक्षा की थी। ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी उसके पुत्र बन गये थे। पतिव्रता सावित्रीने पतिको मृत्युके मुखसे बचा लिया था। पातिव्रत्यकी शक्तिके सामने सारी शक्तियाँ नतमस्तक होती हैं।

किसको उपदेश न देना और किसको देना चाहिये? इस विषयमें जो कुछ लिखा है तथा जो वचन उद्धृत किये गये हैं, उनसे यह नहीं सिद्ध होता कि स्त्रीको भी इस प्रकार उपदेश लेनेका अधिकार है; क्योंकि '**नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने**' इत्यादि वचनोंमें जितने विशेषण आये हैं, सब पुरुषके हैं। उनमें स्त्रीलिंगका प्रयोग नहीं है, अतः वे वचन पुरुषोंपर ही लागू होते हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद्‌का उदाहरण देते हुए कुछ तथाकथित संन्यासी कहते हैं—'**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव**' इत्यादिके साथ '**पतिदेवो भव**' का उपदेश नहीं है। इसलिये उनकी रायमें 'पतिभक्ति' का उपदेश शास्त्रीय नहीं है। स्त्रीके लिये गुरुभक्तिका उपदेश शास्त्रीय है। बलिहारी है इस सूझकी।

वहाँ स्पष्ट लिखा है—'**वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति**'—अर्थात् 'वेदोंको पढ़ाकर अन्तमें आचार्य अपने शिष्यको उपदेश देते हैं।' यह स्पष्ट है कि वेद पढ़नेकी आज्ञा पुरुषोंको ही है। अतः उपनिषद्‌का वह आदेश ब्रह्मचारी बालकोंके लिये है, बालिकाओंके लिये नहीं। अतः '**पतिदेवो भव**' उपदेश वहाँ क्यों होता? '**आचार्यदेवो भव**' उपदेश यदि स्त्रीके लिये होता तो '**आचार्यदेवा भव**' लिखा जाता '**आचार्यदेवो भव**' यह पुँल्लिंग प्रयोग नहीं होता।

जहाँ स्त्री-धर्मका वर्णन है, वहीं मनुस्मृतिमें स्पष्ट लिखा है कि स्त्री अपने पतिकी देवताकी भाँति पूजा करे।

उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः।

'**ऋतं ज्ञानान्न मुक्तिः**' बिना ज्ञानके मोक्ष नहीं होता, यह सत्य है; परंतु पतिव्रता स्त्रीको वह ज्ञान पातिव्रत्यसे ही प्राप्त हो जाता है। इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें। महाभारतमें पतिव्रता और धर्म-व्याध आदिके उपाख्यान प्रसिद्ध हैं। जो स्वधर्मके विपरीत स्त्रियोंसे अपनी सेवा कराते हैं, उनकी सेवासे मोक्षदायक ज्ञान प्राप्त होगा, ऐसी आशा तो किसीको नहीं रखनी चाहिये। सच्ची पतिव्रता थोड़े ही समयमें सिद्धि-लाभ करके त्रिकालज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान भी प्राप्त कर लेती है। स्वयं भगवान् उसकी पतिभक्तिसे सन्तुष्ट होकर उसे तत्त्वज्ञान करा देते हैं और वह मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

अतएव मेरी समझमें संन्यासियोंका भोली-भाली स्त्रियोंको बरगलाकर उनसे अनुचित लाभ उठाना महान् पाप है। इसका प्रतिवाद होना चाहिये। मेरी धर्मप्राणा देवियोंसे भी प्रार्थना है कि वे उनके पास जाकर अपने धर्मपथसे च्युत न हों।

तुरीयावस्था

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्द 'गिरि'जी महाराज)

ओ३म् शब्द वेदोंका है। इसमें बहुत भावना है। ओ३म् या सोऽहम्, ये दो ही जपके शब्द हैं। यदि इनको उद्योगी और अपने मनको जगानेवाला जपे तो यह सबसे उत्तम है। परंतु इतना है कि इनको जगानेके लिये मनमें एक विशेष भावना करनी पड़ती है। थोड़ा मनको विशेष जगाना पड़ता है। सोऽहम्को ही यदि किसी बहुत छोटे बच्चेको कहो कि भई! आप बोलो सोऽहम्, उससे सोऽहम् तो जल्दीसे निकलेगा नहीं, बल्कि ओ३म् जल्दीसे कह देगा। तो सोऽहम्का ही बड़ा कोमल स्वरूप है ओ३म्।

साँसका अन्दर आना और बाहर जाना, यही जीवरूप है। संस्कृतमें जीव जिसको कहते हैं, उसका अर्थ है प्राणको धारण करना। प्राणका तात्पर्य यही है कि बाहर साँसको फेंकना और फिर अन्दर साँसको खींचना। अन्दर खींचनेमें और बाहर छोड़नेमें दो प्रकारके शब्द होते हैं, दो प्रकारकी आवाजें होती हैं, 'सः' की और 'अहम्' की। सः माने वह और अहम् माने मैं। एक बहुत कोमल बच्चा जो अभी बोलना नहीं जानता, ऐसी अवस्थाके बीचमें यदि बोले तो 'सो' की जगह 'ओ' निकल जायगा, अहम्की जगह ओ३म् निकल जायगा। तो ये ओ३म् शब्द जो है, वह सोऽहम्का ही छोटा रूप है और सोऽहम् शब्द जो है, वह प्राणकी ही एक आवाज है। प्राणका मतलब जो साँस बाहर जाता है और फिर अन्दर आता है। अब अन्दर आना और फिर बाहर जाना ही जीवका स्वरूप है। साँसका ज्ञानपूर्वक अन्दर आना और ज्ञानपूर्वक बाहर जाना यही ओ३म्का स्वरूप है। यही दो आवाजें हैं। अब इन आवाजोंके साथ, यदि अपने मनको कोई जगाये तो ये आवाजें जो हैं, परमधाममें भी टिकी रहती हैं। ये ओइम् बीजरूप है। इसका मतलब कोई भी प्राणी यदि संसारसे मर जायगा, तो भी सूक्ष्मरूपमें उसका श्वास इसी शब्दका जप करेगा और इसी शब्दके जपको ले करके, अपनेमें जहाँतक जीवकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अवस्था है, वहाँतक पहुँचना है।

अब उसके लिये यदि कोई ओइम्का भी जप करता है तो यह शास्त्र उसको सबसे श्रेष्ठ मानता है। यदि ओइम्का जप करना हो तो, जीवके अन्दर तीन अवस्थाएँ हैं—(१) जाग्रत्, (२) स्वप्न और (३) सुषुप्ति। सुषुप्ति नाम उस गाढ़ निद्राका है, जिसमें किसी चीजका पता नहीं रहता, कोई इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं, कोई दृश्य—नजारा नहीं दीखता, अपने-आपको भी आदमी नहीं जानता। अब उससे थोड़ी-सी नींदकी एक दूसरी अवस्था है, जो कि निम्न कोटिकी है, वह है स्वप्न-अवस्था, जिसमें कि जो संस्कार हैं, वह अपने ढंगकी लीला वहाँ खड़ी कर देते हैं। धरती, पाताल, आकाश वगैरह सब कुछ रच देते हैं और इस आदमीको दिखा देते हैं। जैसे उसके संस्कार हैं, वैसे उलझनमें पड़ा हुआ भी दिखा देते हैं। ये है स्वप्न-अवस्था।

इसमें वो इन्द्रियाँ तो रहती नहीं जो कि जागती हुई हालतमें थीं, वहाँ अपने ही ढंगकी जैसे नई पृथ्वी, नया आसमाँ, नया सूरज, नया चाँद और ऐसे वहाँ नयी इन्द्रियाँ, नया ही देह होता है, तो यह एक स्वप्न-अवस्था है। तीसरी अवस्था है जाग्रत्, जो हम लोग देख रहे हैं। जिसमें ये जागता हुआ मन, पाँच इन्द्रियाँ ले करके, कानोंसे जहाँ सुनता है, आँखोंसे देखता है, नाकसे सूँघता है। ये पाँच इन्द्रियाँ काम कर रही हैं, उसके साथ छठा मन और उसीके अनुसार जितना लम्बा-चौड़ा ये व्यापक भगवान्का देह है, ईश्वर-परमात्माकी जो कायारूप जगत् है, इसके बीचमें वह अपना कुछ स्वार्थ रखता है। ये जितना सारा है, ये सारा विश्व जाग्रत् अवस्थामें है। तो बस! ये तीन ही अवस्थाएँ हैं। ओइम् शब्दके बीचमें भी तीन ही अक्षर हैं—अ, उ और म्, तो 'अ' जो अवस्था है, ये जाग्रत्को कहती है, 'उ' स्वप्नको कहती है, 'म्' निद्राको कहती है। यहाँ जो व्याख्यान किया है, माण्डूक्योपनिषद्का है। उस उपनिषद्में उन्होंने यह बताया है कि ये तीन ही अवस्थाएँ जीवके अन्दर होती हैं।

इन तीन अवस्थाओंसे परे एक चौथी अवस्था है—तुरीयावस्था। चौथीका नाम संस्कृतमें तुर्या होता है, यह अवस्था तो जरूर है, परंतु तीनोंसे विलक्षण है, ये एक अवस्था है मनुष्यकी, जिस जगह पहुँच करके आदमी इतना स्वतन्त्र हो जाता है कि सत्यका साक्षात्कार हाथपर रखे आमलेकी भाँति कर सके। प्रेषक—श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग

साधकोंके प्रति—

सब नाम-रूपोंमें एक ही भगवान्

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भारतीय संस्कृतिमें सबसे मुख्य वेद माने जाते हैं। वे अपौरुषेय हैं, अनादि हैं और सदा रहनेवाले—नित्य हैं। उनमें (कर्म, उपासना और ज्ञान) तीन काण्ड माने जाते हैं। उन्हीं तीनोंका विशद एवं विस्तृत वर्णन पुराण और इतिहास-ग्रन्थोंमें मिलता है, जिनकी रचना सुन्दर-सुन्दर कथाओंके द्वारा सर्वसाधारण जनताको गम्भीर विषय सरलतासे समझानेके लिये श्रीव्यासदेवने कृपापूर्वक की है। ऐसे तो पुराण भी अनादि ही माने जाते हैं, पर इनका समय-समयपर जीर्णोद्धार होता रहा है। पुराणोंमें ही लेख मिलता है कि इनका कलेवर बहुत बड़ा था। उसको अल्पायु कलियुगी जीवोंके लिये संक्षिप्तरूपसे बनाया गया है। इनमें सांसारिक तथा पारमार्थिक सर्वोपयोगी सर्व विषयोंका बड़ा अच्छा वर्णन किया गया है। पढ़नेसे मालूम होता है कि इनमें दैवी-सम्पत्ति, आसुरी-सम्पत्ति, तीर्थ, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, तप, संयम, सेवा, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, स्त्रीधर्म, सामान्यधर्म, राज्यधर्म, प्रजाधर्म, जाति, देश, काल, समय, सम्बन्ध, परिस्थिति आदिको लेकर अवश्यकर्तव्य-कर्म आदि-आदि विषयोंका गूढ़ आशयसहित विचित्र ढंगसे वर्णन हुआ है। साधारण रीतिसे देखनेपर परस्पर बड़ा विरोध-सा मालूम देता है, जिनका हम-जैसे साधारण मनुष्योंके द्वारा तो समाधान करना भी कठिन हो जाता है, क्योंकि जब जहाँ जिस तीर्थ, व्रत आदिकी महिमाका वर्णन करने लगते हैं तो उसीको सर्वोपरि बतला दिया जाता है। जैसे—श्रीगंगाजीकी महिमा कही तो कहा—इसके समान न सरयू है, न तो पुष्कर है, न यमुना है, न तीर्थराज प्रयाग ही है, और तीर्थराजका वर्णन करने लगे तो कहा कि इसके समान और कोई तीर्थ है ही नहीं, एक यही सम्पूर्ण तीर्थोंका राजा है। काशी-माहात्म्यमें आया है कि इस मोक्षदायिनी पुरीके समान तीर्थ इस त्रिलोकीमें कोई नहीं है; क्योंकि यह भगवान् शंकरके त्रिशूलपर बसी हुई है। ऐसे ही कार्तिक-माहात्म्य, वैशाख-माहात्म्य, मार्गशीर्ष-माहात्म्य तथा एकादशी आदि व्रतोंके विषयमें भी कथन है। कहीं-कहीं ऐसा कहा है कि तीर्थयात्राका फल साधारण है, व्रतका विशेष; व्रतसे इन्द्रियसंयमका और इन्द्रियसंयमसे भजन—भगवच्चिन्तनका और अधिक एवं भगवत्प्रेमका उससे भी अत्यधिक है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

इसका समाधान मेरी धारणामें यह है कि पूर्वका वर्णन निष्ठाकी दृष्टिसे है और दूसरा वर्णन वस्तु-तत्त्व-दृष्टिसे है। अतः इसमें कोई विरोध नहीं है। निष्ठाका तात्पर्य है—एक मनुष्यविशेषकी किसी इष्टपर हृदयकी दृढ़ धारणा। उस धारणाको अत्यधिक दृढ़ करनेके लिये ही पहला वर्णन है। इससे हृदय-प्रधान साधककी वृत्ति सब ओरसे हटकर एक इष्टमें लग जाती है और उसीमें सर्वोपरि अनन्य भावना हो जाती है, ऐसा होनेसे जब सर्वोपरि परमात्मा प्रकट हो जाते हैं, तब या तो उसे सब यथार्थ तत्त्व भगवान् समझा देते हैं या उसके स्वयं समझमें आ जाता है—

कहा भी है—

आदि अन्त जन अनन्दके सारे कारज सोय।
जँहि जिव उर नहचो धरै तँहि ढिग परगट होय॥

फिर उसके लिये कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। वह कृतकृत्य हो जाता है। दूसरे प्रकारका वर्णन बुद्धिप्रधान तर्कशील मनुष्योंके लिये है। उसपर विश्वास करके चलनेवाला क्रमशः एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे साधनद्वारा यथार्थ स्थितिमें पहुँच जायगा। यदि तारतम्यताके विवेकद्वारा निःसन्दिग्ध होकर तेजीसे चलता रहेगा तो वह क्रमशः श्रेणियोंको पार करता हुआ उस पार पहुँचकर सदाके लिये कृतकृत्य हो जायगा।

सिद्धान्ततः बात यह है कि श्रीपरमात्मा एक हैं, वे ही अनेक जगह अनेक नामोंसे कहे गये हैं। वे अनेक जगह अनेक रूपोंमें रहते हुए भी हरेक जगह पूर्णरूपसे

ही विराजमान हैं। जो उनको जिस भावसे, जिस रूपमें, जिस प्रकार चाहता है, वह वैसे ही उनको प्राप्त कर लेता है, क्योंकि वे भी उसे वैसे ही चाहते हैं। उनकी यह घोषणा है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

अत: कोई चाहे किसी भी रीतिसे उनको भजे, यदि आजतक किसीने भी जिस प्रकारसे उपासना न की हो, ऐसे किसी नये ढंगकी उपासना भी कोई करे, तो भी प्रेमकी पूर्णता होनेपर उसे परमात्माकी प्राप्ति अवश्य होगी; क्योंकि वह एकमात्र अपने प्रियतम परमात्माको चाहता है। उनके लिये जो कनक, कामिनी, आराम, मान, सत्कार, कीर्ति आदि लोक और परलोककी भोग-सामग्रियोंका त्याग करता है, किसी भी नाशवान् पदार्थको नहीं चाहता, सच्ची हार्दिक लगनसे सर्वोत्तम परम पुरुष पुरुषोत्तम भगवान्‌को चाहता है, ऐसे साधकसे बिना मिले वे कैसे रह सकते हैं।

कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस तत्त्वको मनुष्य सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि, सर्वथा पूर्ण ईमानदारीके साथ मानता है, उसका वह चाहे कैसा भी नाम-रूप क्यों न मानता हो, चाहे किसी भी प्रकारविशेषसे उसकी सेवा, पूजा, उपासना क्यों न करता हो, भगवान् उसको अपनी ही उपासना, सेवा और पूजा मानते हैं; क्योंकि सर्वोपरि तत्त्व एक है और वही भगवान् हैं। साधककी समझमें भूल हो सकती है, परंतु भगवान्‌के यहाँ तो भूल नहीं होती। ये एकमात्र भावको ही देखते हैं। अतः श्रद्धालु साधकोंको चाहिये कि भगवान्‌के किसी भी रूप और नामपर पूर्ण विश्वास करके अनन्य प्रेमपूर्वक उनका स्मरण करता रहे, किसी भी अवस्थामें उनको भूले नहीं।

महारास-लीला

(श्रीरामकुमारजी गुप्त)

परम सुहावनी, लुभावनी शरद ऋतु,
व्योम बीच राज रही पूनो की जुन्हाई है।
अमल-धवल मानो शत दामिनी की द्युति,
ब्रज रज माँहि कोटि चन्द्रिका सुहाई है॥
वृन्दावन-वेलि, लता, कदम, करील कुंज,
संसृति सकल रसराशि में नहाई है।
मुहुर-मुहुर जगी सप्त रागिनी की ध्वनि,
अधरन धरी मधु मुरलि कन्हाई है॥ १॥
श्रवनन सुनि मन मोहन मुरलि ध्वनि,
कुरंग, विहंग जागे, मोर चकई चकोर।
धाईं ब्रजवाम लेत मोहन विविध नाम,
नन्दलाल, नटवर, गिरिधर, चित्तचोर॥
देव, नर, किन्नर, मुनीश, योगी, गोपी रूप,
घिरि आये व्रजराज के समाज चहुँओर।
कुंचित अलक, शुभ वदन, मदिर हास,
काम छवि, कोटि रवि, निरखत हो विभोर॥ २॥
झाँझ, पखावज वेणु मृदंग,
उमंग में दिव्य बजे बहु बाजे।
सृष्टि-नटी जड़-चेतन संग लै,
आई मनोहर साज है साजे॥
माधव-राधिका, रास-विलास,
निहारिकै काम कला निज लाजे।
गोपी अनेक हैं, रूप अनेक हैं,
एक ही श्याम, अनेक विराजे॥ ३॥
थिरकत नन्दलाल अनुहरि गति, ताल,
गलबाँहि डाल सोहैं श्याम-श्यामा संग में।
दमकत वदन, वसन सब फहरत,
घूमि-घूमि, झूमि-झूमि नाचे रास-रंग में॥
लहरत प्रणय उदधि की नयी हिलोर,
क्षण-क्षण बाढ़ी प्रीति ब्रज-बाल अंग में।
निरखत महारास चाँदनी ठठुकि रही,
बार-बार हार-जीत होत है अनंग में॥ ४॥
नर्तत गोपिका मण्डल राजित,
माधव-राधिका दिव्य मनोहर।
शारद शर्वरी रश्मियाँ मादक,
मोहकता भरतीं उर-अन्तर॥
रास-रसामृत से अभिसिंचित,
भूधर, सिन्धु, धरादिक अम्बर।
आनन्द पूरित हो विधि-शंकर,
गा रहे हैं जय हो नट नागर॥ ५॥

कटु वाणीका त्याग करें

[वाणी-बाण-निर्वाण]

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ)

हमारी वाणीमें कटुता होगी तो वही वाणी बाण-जैसी घातक-हिंसक हो सकती है। हमारा-आपका समाज या हम और आप ये जानते हैं, मानते हैं, समझते भी हैं कि गोलीकी चोट भर सकती है (गोलीका घाव भर सकता है), परंतु बोलीकी चोट जीवनपर्यन्त टीस देती रहती है। आपकी असलियत आपके शब्द बताते हैं। आप बोलो जिसमें कि मैं आपको जानूँ, (Speak so that I may know you.) जिस वाणीमें मधुरताके साथ सच्चाई तथा अच्छाई मिली हो, वह वाणी निर्वाणकी अर्थात् शान्तिकी प्रदायिका होती है। इस बातको कोयल तथा कौआके उदाहरणसे समझा जा सकता है। कोयल किसीको सम्पत्ति नहीं देती तथा कौआ किसीकी सम्पत्ति नहीं चुराता, फिर भी लोग कोयलकी प्रशंसा करते हैं, उससे प्रेम करते हैं, जबकि कौएकी निन्दा करते हैं, उससे घृणा करते हैं। एक बात ध्यान देनेकी है कि हमारे जीवनमें कोयल कहीं भी उपयोगी नहीं है, जबकि प्राचीन समयसे प्रसिद्धि है कि कौआ घरकी मुण्डेरपर बोलता हो, तो लोग अतिथिके आगमनका संकेत मानते हैं, कौआ अर्थात् प्रियतमके आगमनका संदेशवाहक। इतना ही नहीं, आस्तिक हिन्दू प्रतिवर्ष श्राद्धपक्षमें (पितर पक्षमें) ढूँढ़-ढूँढ़कर मनुहार करके कौएको ग्रास देते हैं तथा प्रसन्न होते हैं कि चलो हमारे पितरोंतक हमारा श्राद्धान्न पहुँच जायगा। प्रतिदिन काकबलि देते हैं। इतना उपयोगी होनेपर भी कर्कश वाणीके कारण बेचारा निन्दित बन जाता है, जबकि कोयल कुछ नहीं करती, केवल मधुर वाणीद्वारा सबकी प्रीतिपात्र बन जाती है। प्रसिद्ध दोहा है—

कागा काको धन हरै, कोयल काको देत।
मीठी वाणी बोलकर, जग अपनो कर लेत॥
तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण इक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर॥

मधुर वचन रवि रश्मि सम, जन मन मनु अरविन्द।
विकसत सुरभित वचन सुनि, उमगत अति आनन्द॥

कहनेका आशय मात्र इतना ही है कि हम अपनी वाणीका सदुपयोग करें, दुरुपयोग न करें। मित्र बनायें, शत्रु न बनायें। गीतामें भगवान् कृष्ण कहते हैं—'हे पार्थ! दूसरोंके चित्तको शीतलता देनेवाली वाणीका प्रयोग करना चाहिये। जो सत्य हो, प्रियतायुक्त हो, हितकारक भी हो।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

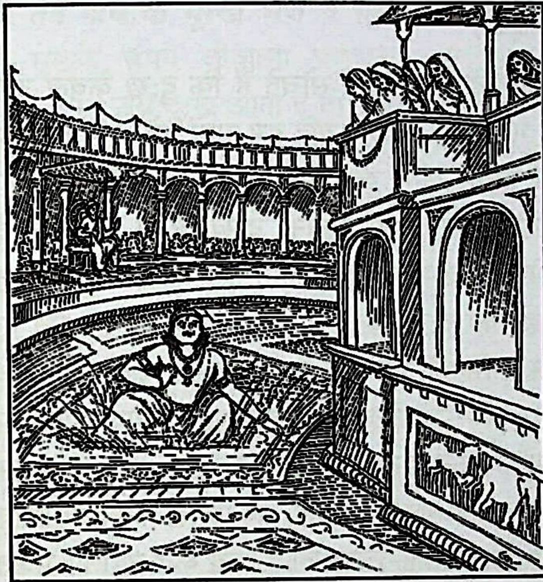
सच्चाई तो यही है कि हम सब जानते हुए भी अपने स्वभावसे विवश हो जाने-अनजानेमें लोगोंकी निन्दा-प्रशंसा करने लगते हैं। एक बहुत प्यारा सूत्र है—

ऋतवाक्-मधुर सत्याश्रित वाणी
मितवाक्-सीमित आवश्यक वाणी
हितवाक्-हितकारिणी वाणी

ऋत्वाक्, मितवाक्, हितवाक् अर्थात् हम सत्य बोलें—साथ ही कम बोलें—साथ ही ध्यान रहे कि जिसमें सर्वहित (स्वहित-परहित) भरा हो, वही बोलें—अव्यर्थ बोलें, व्यर्थ न बोलें। असंख्य उदाहरण इतिहास, पुराणोंके आख्यानोंमें मिल जायँगे, असंख्य उदाहरण हमारे दैनिक जीवनमें सहयोगी, सहकर्मी, परिजन, पुरजनोंमें मिल जायँगे, कि अनावश्यक बोलनेवाला, कर्कश तथा मिथ्या बोलनेवाला किसीको अच्छा नहीं लगता, परंतु कम बोलनेवाले, सत्य बोलनेवाले, नैतिकता-युक्त बोलनेवाले सबको अच्छे लगते हैं।

सुनते हैं कि द्रौपदीके वाक्यरूपी आगकी एक चिंगारीने ही महाभारतके भीषणतम महासंग्रामका रूप लेकर पूरे विश्ववैभवको जलाकर भस्म कर दिया। जलमें थल तथा थलमें जलकी भ्रान्तिसे दुर्योधन सरोवरमें

गिर पड़ा, इस दृश्यको देखकर सखियों-सहित द्रौपदी हँस



पड़ीं, हँसना ही बहुत खतरा था; क्योंकि उपहासकी आग दिलको जलाती तो है, पर धुआँ नही उठता, उससे भी अधिक आगे बढ़कर आगमें घीका काम करती हुई द्रौपदीकी व्यंग्यात्मक बोली कि—'अंधेका अंधा'। ये बात कितनी सच है—ये विषय अलग रहा, परंतु यह बात सब जानते एवं समझते हैं कि घरोंकी, संस्थाओंकी, पार्टियोंकी, पारस्परिक कलहका अधिकांश कारण है असंयत वाणी। आपने अपने शरीरके विषयमें कभी गम्भीरतासे नहीं सोचा होगा, जरा सोचो—आँख दो, कान भी दो, नाक भी दो, हाथ-पैर भी दो, परंतु जिह्वा मात्र एक। इसका मतलब स्पष्ट है कि हम जितना देखें, सुनें, सूँघें, करें, चलें उसका आधा ही बोलें। नहीं-नहीं, अभी भी आपने अपने बारेमें सहीसे नहीं सोचा, आओ विचार करें, देखनेको दो आँख, सुननेको दो कान आदि…। ध्यान देना—आँख भले ही दो हो, परंतु काम एक ही है केवल देखना। आँख देखनेके सिवाय कुछ नहीं कर सकती। कान सुननेके सिवा कुछ नहीं कर सकते। परंतु जिह्वा एक बनायी उससे काम लिये दो, जिह्वा बोलना और रसका ज्ञान कराना दो कार्य करती है, पूरे शरीरमें केवल जिह्वा है, जो कर्मेन्द्रिय भी है तथा ज्ञानेन्द्रिय भी है। कोई तो कारण होगा जो विधाताने इस छोटी-सी जीभको इतना व्यस्त रखना उचित समझा अर्थात् आत्महित चाहनेवाला व्यक्ति जितना देखे या सुने, उससे एक चौथाई ही बोले। क्योंकि एक कामके लिये दो आँखें, दो कान आदि हैं, जबकि जीभ एक ही है, परंतु बेचारी जीभसे दो काम लेने हैं, अत: गणितकी दृष्टिसे जिह्वासे २५ प्रतिशत बोलना तथा २५ प्रतिशत खाना, इतना ही काम लेना प्राकृतिक है, वैज्ञानिक है। आप जानते हैं कि इस जिह्वाको बोलचालमें जबान (जवान) भी कहते हैं। क्यों? क्योंकि ये कभी बूढ़ी नहीं होती। आँख बूढ़ी होती है तो चश्मा लगा लो, दाँत बूढ़े होते हैं तो नये दाँत लगवा लो, कान बूढ़े होते हैं तो मशीन लगवा लो, पूरा शरीर बूढ़ा हो सकता है, परंतु ये जबान सदैव जवान रहती है। बुढ़ापेमें जब घरमें कोई नहीं सुनता तब टायँ-टायँ जोरसे बोलती है, जब पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है, तब चटकारे लेकर चटपटे गरिष्ठ भोजन चाहती है। बात स्पष्ट है कि—'जिसने अपनी इस जिह्वापर नियन्त्रण कर लिया, उसके लिये, यहीं स्वर्ग है, यहीं वैकुण्ठ है। जीवन्मुक्त महापुरुष कम बोलते और कम ही खाते हैं।

ये जिह्वा खराब बोलीसे स्वभाव एवं सम्बन्ध बिगाड़ देती है तथा खराब-गरिष्ठ एवं अधिक भोजनसे शरीर-स्वास्थ्य एवं पाचन शक्तिको बिगाड़कर रोगी बना देती है। अच्छा भजन करनेवाला अच्छा भोजन नहीं कर सकता। अच्छा भोजन करनेवाला कभी अच्छा भजन नहीं कर पायेगा। भोजनकी मात्रा घटते ही भजन बनता है (भ्+ओ+ज+न)। किसीका दिमाग विपरीत जा सकता है कि भजनकी मात्रा बढ़ते ही भोजन भी हो सकता है, परंतु जिनके लिये भजन ही भोजन है, उनके लिये ये बात लिखी है। सच भी है भजनकी मात्रा बढ़ते ही ये भजन ही तृप्तिका साधक होकर पुष्टि देगा, साधारण भोजनकी अधिक आवश्यकता न रहेगी। भोजनके विषयमें किसी आंग्लभाषाके विद्वान्‌ने बहुत अच्छी बात कही है—'आप भोजनको औषधिके समान अल्पमात्रामें लो, अन्यथा एक समय आयेगा, जब आपको औषधि भोजनकी मात्रामें खानी पड़ेगी। (Eat your food as your medicines. Otherwise—You have to eat medicines as your food.)

शेष विचार आपके हाथमें है।

बस! दुःख अब और नहीं

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

धर्माचार्योंका कथन है कि कर्मरूपी वृक्षके दो फल हैं—दुःख और सुख। पापकर्म अर्थात् बुरे कर्मका फल दुःख है और पुण्यकर्म यानी अच्छे कर्मका फल सुख है। मनुष्यका स्वभाव है कि वह इस ध्रुव सत्यको जानते हुए भी पापवृत्ति छोड़ना नहीं चाहता और साथ ही उसके फलसे बचना भी चाहता है, परंतु यह सम्भव नहीं है; क्योंकि विषकी बेल लगानेपर अमृतकी अपेक्षा करना मूर्खता है। प्रायः प्रत्येक प्राणीको अपना राई-जैसा दुःख भी पहाड़-जैसा लगता है और दूसरेका पर्वत-जैसा दुःख राई-जैसा प्रतीत होता है। इस विषयमें दो मत नहीं कि संसारमें दुःख है, जिसे सभी महापुरुषोंने एक मतसे स्वीकार किया है। गीतामें भगवान्ने जगत्को **'दुखालयमशाश्वतम्'** कहा है तो नानकदेवजीने भी कहा—*'नानक दुखिया सब संसार।'* संत तुलसीदासजीने भी कहा है—*'सकल जीव जग दीन दुखारी।'* वहीं भगवान् बुद्धने भी चार आर्य सत्योंमें पहला सत्य दुःखको ही बताया है। कोई निर्धनताके कारणी दुखी है तो कोई धनकी बहुलताके कारण। कहा भी है—

दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णावश धनवान।
कहीं न सुख संसार में सब जग देखा छान॥

कई बार लोग प्रश्न करते हैं कि अमुक व्यक्ति इतने बुरे कर्म करनेपर भी सुखसे गुलछर्रे उड़ा रहा है। ऐसा क्यों है? इस शंकाका समाधान करते हुए ज्ञानीजन समझाते हैं कि जबतक मनुष्यके पूर्वजन्मके सत्कर्म प्रबल रहते हैं, तबतक इस जन्मके कुकर्म उसे स्पर्श नहीं करते। जैसे ही उसके पुण्यकर्म क्षीण होते हैं, पापकर्म अपना फल देने लगते हैं। सन्तोंने कहा भी है—

जब तक जिसके पुण्य का पहुँचे नहीं करार।
तब तक उसे माफ हैं गुनाह करे हजार॥

महापुरुष कहते हैं कि सुख-दुःख धूप-छाँवकी तरह हैं, जो समय-चक्रके साथ आते-जाते रहते हैं। जैसे रात्रिके बाद दिन निकलता है, वैसे ही दुःखके बाद सुखकी घड़ी भी आती है। जो इस सत्यको नहीं स्वीकारते हैं, वे यहीं सोचते हैं कि दुःख केवल उनके ही भाग्यमें लिखा है। यदि हम चारों ओर देखें तो पायेंगे कि तमाम लोग इतने बड़े दुःखसे घिरे हैं कि उनके दुःखके आगे हमें अपना दुःख छोटा दिखायी देने लगेगा। संत शेख सादी कहते हैं—मुझे अपने पास जूते न होनेका दुःख तभीतक ही था, जबतक कि मैंने एक ऐसे व्यक्तिको नहीं देख लिया, जिसके पाँव ही नहीं थे।

संत-मनीषी कहते हैं कि संसारमें प्रत्येक प्राणी अपने कर्मोंकी फसल काट रहा है। कर्मरूपी बीज बोते समय तो वह सावधान रहता नहीं, पर फसल काटते समय वह जोर-शोरसे रोता-चिल्लाता है। तब कुछ नहीं हो सकता; क्योंकि कर्मफल तो भोगना ही पड़ेगा—**'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'** कोई भी जीव दुःख पाना नहीं चाहता, परंतु कर्मफलके रूपमें दुःख पाना जरूरी होता है। इसलिये यदि हमें सुख पाना है तो कर्म करनेसे पहले उसके परिणामपर विचार करना होगा। शास्त्रकार कहते हैं कि प्रत्येक दुःख-सुखके लिये हम स्वयं जिम्मेदार हैं, दूसरा कोई नहीं। मानसमें भी कहा है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

कितने आश्चर्यकी बात है कि आज मानव बुरे कर्म करके और दूसरेको पीड़ा पहुँचाकर सुख पाना चाहता है! यह ईश्वरीय विधानके सर्वथा विरुद्ध है। विधाताका विधान कहता है कि दुःख देनेसे दुःख मिलेगा और सुख देनेसे सुख। वैसे भी हम दूसरोंको वही वस्तु दे सकते हैं, जो हमारे पास होती है। इसलिये दूसरोंको दुःख देनेसे पहले हमें दुःख मिलता है। तुलसीसाहिबने कहा है—

चार वेद षट् शास्त्र में बात मिली है दोय।
दुःख दीन्हे दुःख होत है सुख दीन्हे सुख होय॥

गुरुवाणी कहती है—**'परमेश्वर दे भुल्यां व्यापन सभै रोग'** अर्थात् हमारे सब रोगों यानी दुःखोंका मूल कारण है प्रभुका विस्मरण। पलटूसाहिबने तो भगवान्का

भजन न करनेवालोंको मूर्खतक कह दिया है—*'पलटू यह तन पाय के मूरख भजै न राम।'* देखा गया है कि सुखके समय जीवात्मा भगवान्‌का स्मरण नहीं करता, परंतु जब दुःख आता है तो उसकी शिकायतोंका पिटारा खुल जाता है। तब वह कभी अपने भाग्यको कोसता है तो कभी भगवान्‌को, पर भगवान् तो परम दयालु हैं। हमारी आर्त पुकारको वे अवश्य सुनते हैं। कहावत है—*'पूत कपूत भले हो होती न कुमाता माता।'* ईश्वर हमारे माता-पिता हैं और हम उनकी प्रिय संतान। इसलिये हमारे दुःख देखकर वे द्रवित हुए बिना नहीं रहते। यदि जीवका परमात्मामें विश्वास दृढ़ है तो द्रौपदीकी लाज बचानेके लिये वे उसका चीर अवश्य बढ़ा देते हैं।

संत-महात्मा कहते हैं कि दुःख अभिशाप न होकर वरदानका स्वरूप होता है। यह दुःख ही है, जो हमें प्रभुके समीप ले जाता है। श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है कि माता कुन्तीने श्रीकृष्णसे दुःखका वरदान माँगा था; क्योंकि वे जानती थीं कि जब-जब भी उनपर विपत्तिका पहाड़ गिरा, तब-तब श्रीकृष्णको उन्होंने अपने पास खड़ा देखा और दुःखोंसे छुटकारा पाया। इसलिये महापुरुषोंने कहा भी है—

सुख के माथे सिलपरे, जो दूर प्रभु से ले जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम रटाय॥

संतजन कहते हैं कि भगवान् न तो किसीको दुःख देते हैं और न सुख। हमारा अपना मन ही दुःख-सुखकी सृष्टि करता रहता है। वस्तुतः दुःख-सुख शरीरके धर्म हैं, आत्माके नहीं। इसलिये हमारे सारे दुःख-सुख वास्तविक न होकर, काल्पनिक ही हैं। यही कारण है कि विवेकी पुरुष दुःखको हँसते हुए भोगता है, जबकि अज्ञानी आँसू बहाकर।

प्रकृतिका नियम है कि दुःखका एहसास होनेके बाद ही सुखकी अनुभूति होती है। प्रसवपीड़ासे गुजरनेके बाद स्त्रीको मातृत्व-सुखका अनुभव होता है, अग्निमें तपनेके बाद सोना कुन्दन बनता है, बाँसकी छड़ी छिलने और छेदोंका कष्ट सहनेके बाद ही एक मधुर संगीत निकालनेवाली बाँसुरी बनती है। बीज पहले खाक होकर वृक्षका रूप धारण करता है, पत्थरकी प्रतिमा देवालयमें प्रतिष्ठित होनेसे पहले मूर्तिकारकी छेनीका दर्दनाक आघात सहन करती है। अँधेरा ही हमें प्रकाशका सही-सही अहसास कराता है। वस्तुतः दुःख-सुख मनकी भावदशाका प्रकटीकरण है। अस्तु, मनकी दशा तथा दिशाको बदलकर दुःखसे बचा जा सकता है। सुखी रहनेके लिये गीतामें भगवान्‌ने **'समत्वयोग'** का सुन्दर सूत्र देते हुए कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥
(५।१९)

अर्थात् जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा जीवित-अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है। वह नित्य सुखरूप परमात्मामें स्थित हो गया है। ज्ञानीजनोंका कथन है कि दुःखसे निपटनेके तीन उपाय हैं—पहला सकारात्मक सोच, दूसरा सत्कर्मोंका सम्पादन और तीसरा परमात्माका आश्रय। छोटे-मोटे रोजमर्राके दुःख तो मानव-जीवनके अभिन्न अंग हैं। वास्तविक दुःख तो परमात्मासे बिछुड़नेके कारण जन्म-जन्मान्तरों और युग-युगान्तरोंसे होनेवाले पुनर्जन्मका दुःख है, जिसे हम भोगते आ रहे हैं। प्रभुके निष्काम और निरन्तर चिन्तनसे जब हमारा आवागमनका चक्र ही समाप्त हो जायगा तो फिर दुःख कैसा? बहुत दुःख भोग लिया, इसलिये दुःख! अब और नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है कि ईशकृपासे सब दुःख मिट जाते हैं—*'राम कृपाँ नासहिं सब रोगा।'* हम चेतन हैं, इसलिये अचेतन वस्तुओं यानी जड़ पदार्थोंसे नाता जोड़कर हम कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकते। अखण्ड और शाश्वत सुखकी प्राप्तिके लिये हमें महाचेतन तत्त्व अर्थात् ईश्वरसे जुड़ना ही होगा। आनन्द ईश्वरका पर्यायवाची शब्द है और वह ईश्वरानुभूति होनेपर ही मिल सकता है। वेदों-पुराणोंने भी कहा है कि ईशभक्तिके बिना सुखकी प्राप्ति सम्भव नहीं—

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

महाप्रलयके द्रष्टा : चिरजीवी काकभुशुण्डिजी

(डॉ० श्रीमुमुक्षुजी दीक्षित)

सन्त-समाजमें ऐसी मान्यता है कि सर्वप्रथम श्रीरामकथा भगवान् शंकरने माता पार्वतीको सुनायी थी, जो 'अध्यात्म रामायण'के नामसे विख्यात हुई। इसे एक कौए (काक)-ने भी सुन लिया था, और उसी कौएका पुनर्जन्म काकभुशुण्डिके रूपमें हुआ। परम भागवत चिरजीवी श्रीकाकभुशुण्डिजी अनूठे रामभक्त होनेके साथ ही अनन्त कालसे सृष्टिके उद्गम एवं महाविनाशकी विलक्षण घटनाओंके एकमात्र द्रष्टा हैं।

पूर्वके एक कल्पमें कलियुगके समय अयोध्यापुरीमें श्रीकाकभुशुण्डिजीका प्रथम जन्म शूद्रकुलमें हुआ था। वहाँ अकाल पड़नेपर वे उज्जैन चले आये। वे मनसा-वाचा-कर्मणा शिवजीकी भक्ति करते, परंतु अहंकारवश अन्य देवताओंकी निन्दा भी किया करते। वहाँ उन्हें एक वैदिक शिवभक्त ब्राह्मणका सान्निध्य मिला, जो उनको श्रीहरिकी निन्दाहेतु सदैव रोका करते। उन्होंने उन्हें शिवजीका मन्त्र देकर शिवजीकी आराधनाका प्रतिफल श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंमें अविरल भक्ति होना बताया। तब तो काकभुशुण्डिजी गुरुके प्रति भी द्रोह करने लगे। एक बार शिवालयमें मन्त्र-जाप करते समय गुरुजीके वहाँ पधारनेपर अभिमानवश



उन्होंने उठकर उनका अभिवादनतक नहीं किया। तब कुपित होकर शिवजीने उन्हें अधम सर्पयोनिमें जन्म लेकर अजगर होने तथा एक सहस्र बार भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेका दारुण शाप दिया, परंतु आश्रयदाता ब्राह्मण अत्यन्त दयालु थे। उनके द्वारा शापानुग्रहहेतु अभ्यर्थना किये जानेपर शिवजीने क्षमादान करते हुए काकभुशुण्डिजीको सहस्र जन्म पाने, परंतु जन्म-मरणका दुःख न व्यापने, किसी भी जन्ममें स्मृति एवं ज्ञान न मिटने, स्वच्छन्द गतिसे कहीं भी विचरने तथा हृदयमें प्रभु श्रीरामके प्रति अविचल भक्ति स्फुरित होनेका मंगलमय आशीर्वाद दिया। इस कारण, वे विन्ध्याचलमें जाकर सर्प हुए और फिर अनेक शरीर धारणकर अनायास उन्हें त्यागते हुए कालान्तरमें उन्होंने ब्राह्मण देह पाकर अयोध्यामें जन्म लिया।

अब वे ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें स्वच्छन्द गतिसे विचरणकर श्रीरघुनाथजीका गुणानुवाद सुनते। एक बार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्मज्ञानी लोमश ऋषिसे सगुण ब्रह्मकी उपासनाके विषयमें तर्क-वितर्क करनेपर ऋषिने अपने तिरस्कारसे क्षुभित होकर उन्हें पक्षियोंमें अधम—कौआ हो जानेका कठोर शाप दे डाला। उन्होंने ऋषिको प्रणामकर सहर्ष कौएका शरीर धारण कर लिया और उनका भक्ति-भाव भी अक्षुण्ण रहा। तब ऋषिने उन्हें स्नेहपूर्वक पास बुलाकर षडक्षर राम-मन्त्र (ॐ रामाय नमः) दिया और प्रभु श्रीरामके बाल-रूप (रामलला)-को आराध्यदेव मानते हुए उपासनामें प्रवृत्त होनेकी शिक्षा दी। साथ ही पश्चात्तापवश इच्छा-रूप, इच्छा-मृत्यु, भगवान् श्रीरामकी निश्चल भक्ति तथा आश्रय-स्थलसे एक योजन (चार कोस)-तक माया (अर्थात् अविद्या) न व्यापनेका शुभाशीष भी दिया।

महर्षि वाल्मीकिकृत 'योगवासिष्ठ'में उल्लेख है कि महादेवजीकी अष्टमातृकाओंमें सुविख्यात अलम्बुसाके वाहन 'चण्ड' नामक कौएका ब्राह्मीदेवीके रथकी हंसियोंसे रमणके कारण पुत्ररूपमें काकभुशुण्डिकी उत्पत्ति हुई थी। श्रीमन्महर्षि गर्गाचार्यप्रणीत 'श्रीगर्गसंहिता'में

कथानक है कि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें विन्ध्यपर्वतपर तपस्याके स्थलको लेकर हुए विवादमें मुनिवर वेदशिरा और अश्वशिराद्वारा दिये गये परस्पर शापके प्रभाववसे अश्वशिराको कौआ और वेदशिराको सर्प बनना पड़ा। तब वेदशिरा कालियनाग हुए और अश्वशिरा मुनि ही काकभुशुण्डि हुए।

वीतराग वायस (काक) भुशुण्डिजी सुमेरुपर्वतके ईशानकोणमें स्थित नीलगिरिके शिखरपर कल्पतरुके कोटरमें विद्यमान घोंसलेमें चिरकालसे निवास करते हैं। वहाँ चार स्वर्णिम आभायुक्त अत्युच्च पर्वतशिखर हैं, जिनपर पीपल, पाकर, रसाल (आम) और वट (बरगद)-के एक-एक वृक्ष विद्यमान हैं, उनकी उपासना पद्धति अनूठी है—प्रथम प्रहरमें पीपलके वृक्षके नीचे सत्ययुगके धर्मानुसार ध्यान करना, द्वितीय प्रहरमें पाकरके नीचे त्रेतायुगके धर्मानुकूल जप-यज्ञमें तत्पर रहना, तृतीय प्रहरमें आम्र-वृक्षके तले द्वापरके धर्मानुसार मानसिक पूजारत रहना और चतुर्थ प्रहरमें वट-वृक्षके नीचे कलियुगके धर्मानुसार हरि-कथाका सुमधुर गान करना। मध्यमें स्थित मणिकांचन सोपानयुक्त नयनाभिराम सरोवरके निवासी उज्ज्वल मतिवाले हंस एवं अन्य पक्षिगण आदरसहित नित्य उक्त कथाका श्रवण करते हैं। स्वयं शिवजीने हंसका रूप धारणकर वहाँ गुप्त रूपसे रघुनाथजीका चरित्र श्रवण किया था। भगवान् शंकर काकभुशुण्डिजीके उपदेशक एवं आचार्य हैं। अतः प्रकटरूपसे उनके द्वारा कथा सुने जानेपर कथामें विघ्न उत्पन्न होने और आनन्दमें गतिरोध होनेकी सम्भावना थी।

'योगवासिष्ठ'में महर्षि वसिष्ठने स्वयं भगवान् श्रीरामको बताया है कि सत्ययुगके प्रथम दो दशक बीत चुकनेपर एक बार स्वर्गलोकमें देवराज इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदजीद्वारा कही जा रही चिरजीवियोंकी कथाके प्रसंगमें मुनिवर शातातप चिरजीवी श्रीकाक-भुशुण्डिकी महिमाका वर्णन सुनकर अत्यन्त कुतूहलवश उस भुशुण्डि पक्षीको देखने मेरुगिरिकी चोटीपर स्थित उस कल्पतरुके समीप गये थे। वहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर बह रही थी। सामवेदका गान करते हंसोंके बच्चे, मन्त्रोच्चारण करते शुकोंका समूह तथा मयूरोंके बच्चे और विभिन्न जातियोंके अनेक पक्षिगण मौजूद थे। वहीं बैठे हुए बहुत-से कौओंके मध्य उन्होंने वर्षाकालीन मेघके सदृश श्याम वर्णवाले सर्वांगसुन्दर, चिरजीवी होनेके कारण 'चिरंजीवी' नामसे विख्यात श्रीभुशुण्डिजीका दर्शन पाया था। पुनः त्रेतायुगमें रामावतारके समय उनसे हुई भेंटमें भी उन्होंने भुशुण्डिको सुमेरुपर्वतके उत्तुंग स्वर्णिम शिखरपर पूर्ववत् ज्यों-का-त्यों बैठा पाया।

काकभुशुण्डिजी 'इच्छा-रूप' का वर पाकर भी कभी कौएकी देह नहीं त्यागते; क्योंकि उस शरीरको पानेके बाद ही उन्हें प्रभु श्रीरामकी अविरल भक्ति प्राप्त हुई थी। 'इच्छा-मृत्यु'का वर पाकर भी वे कभी शरीरका त्याग नहीं करते; क्योंकि शरीरके बिना भजन कदापि सम्भव नहीं। उन्होंने अनेक प्रकारकी असंख्य सृष्टियोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयको देखा है। 'योगवासिष्ठ' में उल्लेख है कि स्वयं भुशुण्डिजीने वसिष्ठजीके समक्ष रहस्योद्घाटन किया था कि ठीक वर्तमान सृष्टिके समान तीन सृष्टियाँ पहले भी अस्तित्वमें रह चुकी हैं। उन्हें कतिपय विशिष्ट सृष्टियोंका भी स्मरण है। एक सृष्टिमें पर्वत एवं भूमि नहीं थी, चन्द्रमा एवं सूर्यके बिना ही पूर्ण प्रकाश आच्छादित था और देवता एवं सिद्ध मानव आकाशमें ही रहते थे। एक अन्य सृष्टिमें तो इन्द्र एवं भूपालतक न थे और दिशा-मण्डल अन्धकारसे व्याप्त था। उनके समक्ष सैकड़ों चतुर्युगियाँ बीत गयीं और असंख्य मनु समाप्त हो गये। कल्पान्तके समय प्रलयकालमें उत्पात वायु बहनेपर काकभुशुण्डिजी घोंसलेको त्याग एवं आकाशमें स्थिर होकर तथा ब्रह्माण्डके विपरीत छोरपर पहुँचकर निर्विकल्प समाधिमें ब्रह्माजीके पुनः सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त होनेतक स्थिर रहते हैं और तत्पश्चात्, सृष्टिका विस्तार होनेपर पुनः ब्रह्माण्डमें प्रवेशकर उसी पर्वतशिखरपर

पूर्वकी भाँति कल्पवृक्षस्थित अपने घोंसलेमें वापस लौट आते हैं। इस प्रकार, चिरजीवी भुशुण्डिजी महाप्रलय तथा प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं विनाशको प्रत्यक्ष देखते हुए चिरकालसे जीवित हैं।

'रामलला' इनके इष्टदेव हैं। जब-जब भगवान् श्रीराम मनुष्य अवतार धारण करते हैं, तब-तब काकभुशुण्डिजी अयोध्या जाकर उनके जन्म-महोत्सवसे लेकर पाँच वर्षकी बाल्यावस्थातक उनकी मधुरातिमधुर रुचिर बाल-लीलाओंका रसास्वादन करनेके प्रलोभनवश वहीं रहते हैं। बालकरूप श्रीरामचन्द्रजी जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ उनके साथ उड़कर आनन्दित होते हैं और आँगनमें पड़ी उनकी जूठनको खाकर कृतकृत्य हो जाते हैं। तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस और ललकदास-विरचित 'सत्योपाख्यान'में वर्णन है कि एक बार प्रभुके समीप जानेपर उन्हें हँसते और दूर भागनेपर रोते देख उनके मनमें मोहवश माया व्याप गयी और बालरूप श्रीरामको पक्वान्न (शष्कुली) खाते देखकर काकभुशुण्डिजीको उनके नारायण होनेपर सन्देह हुआ। अतः कौतुकवश रामललाके हाथसे पूआ लेकर भागे। तब सुदूर आकाशमें सातों आवरणों (जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व एवं प्रकृति)-का भेदन करनेपर भी प्रभुकी भुजाको अपना पीछा करते स्वयंके निकट ही पाया। श्रीरामकी भुजा और अपने मध्य सदैव मात्र दो अंगुलकी दूरी देखकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और उन्होंने भयभीत होकर अपनी आँखें मूँद लीं। फिर नेत्र खुलते ही स्वयंको अवधपुरीमें पाया। तब उनको मायासे भ्रमित देख रघुनाथजीने हँसते हुए मुख-मार्गद्वारा उन्हें अपने उदरके भीतर प्रविष्ट कराके असंख्य ब्रह्माण्डोंके दर्शन कराये। प्रभुसे वर माँगते समय उन्होंने रिद्धि-सिद्धि अथवा मुक्तिके स्थानपर मात्र उनकी निश्चल भक्तिका ही वर माँगा। तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर उन्हें अपनी विशुद्ध भक्तिके साथ ही समस्त शास्त्रोंका मर्म सहज ही जान लेने तथा मायाजनित भ्रम एवं काल कभी न व्यापनेका अमोघ वर देकर निहाल कर दिया।

गोस्वामी तुलसीदासविरचित 'श्रीरामचरितमानस'में प्रसंग है कि श्रीरामको मेघनादद्वारा नागपाशसे बाँधे जानेपर नारदजीने त्रिभुवनपति भगवान् श्रीहरिके वाहन तथा ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ भक्त-शिरोमणि श्रीगरुड़जीको भेजकर उन्हें बन्धन-मुक्त कराया था। तब पक्षिराज गरुड़को उनकी भगवत्तापर संशय हुआ था, जो भुशुण्डिजीके आश्रमकी परिधिमें पहुँचते ही स्वतः दूर हो गया और उनके मुखसे दिव्य राम-कथाको सुनकर श्रीरामके पादपद्मोंके प्रति उनका अनुराग दृढ़ हुआ—

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥

यही नहीं, भुशुण्डिजीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए गरुड़जी कहते हैं कि सच्चे सन्त उसी बड़भागीको मिलते हैं, जिसपर प्रभु श्रीराम अपनी कृपा-दृष्टि डालते हैं। मुझे श्रीरामकी कृपासे आपके दर्शन हुए हैं और आपकी कृपासे मेरा संशय दूर हो गया—

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
राम कृपाँ तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥

तब गरुडजीकी प्रेमसिक्त विनम्र वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजी अत्यन्त दीनता एवं सदाशयतापूर्वक अपनी श्रेष्ठताके स्थानपर प्रभु श्रीरामकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि आपको न सन्देह है और न मोह अथवा माया ही है। आपने तो यहाँ आकर मुझपर दया ही की है। हे पक्षिराज! मोहके बहाने श्रीरघुनाथजीने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है—

तुम्हहि न संसय मोह न माया । मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही॥

इस प्रकार महाप्रलयके द्रष्टा तिर्यक्-योनिधारी महान् राम-भक्त चिरजीवी मुनि श्रीकाकभुशुण्डिजीका पावन जीवन-चरित भगवान्‌की अहेतुकी कृपाका अनुपम उदाहरण है।

'औषधियोंमें नहीं है स्वस्थ जीवनका सूत्र'

(श्रीकरणसिंहजी चौहान, सेवानिवृत्त ब्रिगेडियर)

मानवकी स्वस्थ रहनेकी चेष्टा आजकी नहीं, अपितु प्राचीनकालसे चली आ रही है और यह चेष्टा सम्भवतः आगे भी चलती रहेगी। यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि हम अपने स्वयंके शरीरको स्वस्थ रखनेकी जिम्मेदारियोंसे मुँह मोड़कर स्वयं इसके लिये कुछ भी नहीं करके, पूर्णतया दूसरोंपर आश्रित हो जाते हैं तथा अपना दायित्व उन लोगोंको हस्तान्तरित कर देते हैं, जो रोगके निदानके लिये औषधियों एवं शल्य-चिकित्साका सहारा लेकर उसे निरोगी बनानेका आश्वासन देते हैं।

मानव-शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये एलोपैथी, यूनानी, प्राकृतिक, आयुर्वेद, योग, होम्योपैथी, मैग्नेटिक, विचार-चिकित्सा, हिपनोजियम, रैकी, एक्यूप्रेशर एवं पिरामिड पावर चिकित्सा आदि पद्धतियाँ वर्तमानमें प्रयोगमें आ रही हैं। ये सभी पद्धतियाँ अपने-अपने तरीकोंसे मानव शरीरको निरोगी करनेका दावा करती हैं। आजके युगमें जब औषधि विज्ञान चरम सीमापर पहुँच चुका है, रोगोंकी संख्यामें भी निरन्तर बढ़ोत्तरी तथा जन-मानसका गिरता स्वास्थ्य इस बातकी ओर संकेत करता है कि क्यों नहीं हम एक ऐसी पद्धतिको विकसित करें, जिससे समस्त रोगोंसे छुटकारा पाकर हम अपना बचाव करते हुए स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर सकें। वाल्तेयरने कहा है—'चिकित्सक जो औषधियाँ उपचारके लिये देते हैं, उनके उपयोगके बारेमें वे स्वयं कम जानते हैं, जिन रोगोंके बारेमें औषधियाँ दी जाती हैं, उनके बारेमें बहुत ही कम जानते हैं तथा जिन व्यक्तियोंको यह औषधियाँ दी जाती है, उनके बारेमें वे कुछ भी नहीं जानते हैं।'

ओलिवर वेनडेल होमने कहा था—'अगर औषधि-विज्ञानकी पूरी पुस्तकें समुद्रमें फेंक दी जायँ तो जनमानसके लिये बहुत अच्छा होगा।'

हाल-ही-में नारमन कंजिन्सीने एक बहु-चर्चित पुस्तक 'ऐनाटोमी ऑफ इलनेस' में लिखा है कि 'मैं यह समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्यों और कैसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम चिकित्सकोंका आदर करते रहे हैं, जबकि वे खतरनाक एवं बेकार औषधि देते हैं।'

फारमोकोलॉजी शब्द ग्रीक भाषाके शब्द विष (पॉयजन)-से ही निकला है। यह विचारणीय बिन्दु है कि विषसे कैसे बचा जाय अर्थात् औषधियोंके प्रयोगके बिना हम कैसे स्वस्थ रहें और किस प्रकार अपने शरीरको स्वस्थ रखते हुए जीवनका पूर्ण आनन्द उठायें। आजके वैज्ञानिक युगमें यह भी आवश्यक है कि हम एक ऐसी राह अपनायें, जिससे किसी चिकित्सकके पास जाये बिना और बिना किसी औषधिका सेवन किये तथा बिना चीरफाड़की जरूरतका सहारा लिये ही मात्र रोकथामसे ही अपने शरीरको पूरी तरहसे स्वस्थ रख सकें।

हम बीमार क्यों पड़ते हैं—अधिकतर बीमारियोंका कारण दूषित वातावरण एवं प्रकृतिके नियमोंकी अवहेलना करना होता है न कि शारीरिक कमियाँ। जान-बूझकर अथवा अनजानेमें हम हर समय दूषित वातावरणके प्रभावमें रहते हैं, जो हमारे स्वास्थ्यपर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, जैसे—हम हर समय किसी-न-किसी रूपमें जीवाणुओं और कीटाणुओंसे संक्रमित सूर्यकी रोशनी, भोजन, पानी और वायुका सेवन करते हैं। यहाँतक कि कुछ जीवाणुओंके लिये तो हमारा शरीर एक 'फूड बैंक' बन जाता है, और वे इसपर ही पलते हैं।

सामान्यतः हम रोगोंके दुष्प्रभावको ही देखते हैं, परंतु दुष्प्रभावोंसे बचनेके उपायोंकी ओर पूरा ध्यान नहीं देते हैं। रोग एवं स्वास्थ्य दोनों शरीरके सन्तुलनपर निर्भर करते हैं। सन्तुलनकी दशामें इनका शरीरपर प्रभाव लाभदायक और असन्तुलनकी दशामें हानिकारक होता है।

सूर्यका प्रकाश—आदिकालसे ही भारतवासी सूर्यके प्रकाशको स्वास्थ्यवर्धक एवं रोगनाशक शक्तिके रूपमें मानते आये हैं। सूर्य-रश्मियोंके दैनिक प्रयोगसे

मनुष्य कफ, पित्त एवं वायुसे उत्पन्न सभी रोगोंसे मुक्त होकर सौ वर्षपर्यन्त जीवित रह सकता है। उसमें भी सूर्यकी प्रातःकालीन किरणें अत्यधिक उपयोगी होती हैं।

जल—मानव-शरीरमें लगभग दो तिहाई मात्रा जलकी होती है। जलकी मात्राको बनाये रखनेके लिये ८ से १० गिलास पानी रोज पीना हितकर होता है। मुख्यतः वृद्धोंको तो बिना प्यास ८-१० गिलास पानी रोज पीना चाहिये; क्योंकि वृद्धावस्थामें प्यास कम लगती है, लेकिन जलकी आवश्यकता तो बनी ही रहती है। जापानके सिकनेस संस्थानने हालहीमें आम जनताके लिये एक बुलेटिन जारीकर यह बताया कि जिन असामान्य बीमारियोंका निदान अभीतक सम्भव नहीं हो पाया है, उन्हें जल-चिकित्सासे ठीक किया जा सकता है। यह एक बहुत ही सरल, सुविधाजनक तथा बिना व्ययकी चिकित्सा है। इसमें प्रातः उठते ही ३ गिलास पानी पीना होता है, जिससे कब्ज-जैसे रोग तो कुछ दिनोंमें एवं दूसरे रोग कुछ समयमें ठीक हो जाते हैं।

साँसकी सामान्य प्रक्रिया—साधारणतया हमारे फेफड़े ८,७६,००० गैलन वायु साँसके माध्यमसे लेते हैं। एक मिनटमें १५ बार साँस लेनेकी प्रक्रिया होती है। इस प्रकार एक दिनमें २१,६०० बार यह प्रक्रिया होती है। साँस लेनेकी गति मनुष्यके स्वास्थ्यके साथ जुड़ी रहती है। जल्दी-जल्दी साँस लेना एक तनावयुक्त अस्वस्थ शरीरकी ओर संकेत करता है। इसलिये यह जरूरी है कि पूर्ण मात्रामें साँस ली जाय। जो ऑक्सीजन साँसके द्वारा अन्दर ली जाती है, उसकी १/५ मात्रा मस्तिष्कके काममें आती है। व्यायाम एवं प्राणायाम करनेसे स्वतः ही वायुकी आवश्यकताकी पूर्ति हो जाती है। 'योग सुधा' बेंगलूरुके शोधके अनुसार यदि हम बायीं नासिकासे २७ बार साँसकी प्रक्रिया दिनमें चार बार एक महीनेतक अपनायें तो यह प्रक्रिया शान्ति प्रदान करती है। यही प्रक्रिया दाहिनी ओरसे करनेपर वजन कम हो जाता है।

व्यायाम—व्यायाम एक आश्चर्यजनक एवं शक्तिवर्द्धक औषधि है। अगर वैज्ञानिक तरीकेसे, प्रतिदिन ४० मिनट व्यायाम किया जाय, तो यह शरीरके अंगोंके तन्तुओं (सेल्स)-को पुनः ताजा कर देता है, जिससे शरीररूपी मशीन सुचारु रूपसे कार्य कर सकती है। हालके कई वैज्ञानिकोंने परीक्षणकर यह उजागर किया है कि यदि हम किसी अंगका उपयोग नहीं करते हैं, तो उसे खो बैठते हैं। (यूज इट ऑर लूज इट)

ध्यान—ध्यान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति अपने शरीर, मन एवं आत्माका शुद्धीकरण कर सकता है। यदि नियमित तौरपर दिनमें २ बार १५-१५ मिनटके लिये ध्यान किया जाय तो कई प्रकारकी मानसिक बीमारियोंसे छुटकारा पाया जा सकता है तथा जीवन शान्तिप्रिय एवं आनन्दित हो जाता है। ध्यानके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने साथ अपना कुछ समय, अपनी रीढ़की हड्डीको सीधा रखते हुए किसी सुविधाजनक स्थानपर कम्बलके ऊपर बैठकर ध्यान करे। इसके द्वारा शरीरके अंगोंका आपसमें इतना समन्वय हो जाता है कि सकारात्मक विचारोंसे व्यक्ति किसी भी रोगपर स्वतः ही विजय प्राप्त कर सकता है। इससे एक अनुभूति भी प्राप्त होती है, जिससे मनुष्य परिस्थितियोंको स्वीकार कर लेता है। आप वही बन जाते हैं, जो आप सोचते हैं—इसका अनुभव ध्यानमें ही होता है; क्योंकि आन्तरिक शक्तिका उपयोग ध्यानद्वारा ही किया जा सकता है। हमारा हृदय बन्द मुट्ठी जितना ही है, लेकिन हमारा यह अंग हर समय कार्यरत रहता है। ध्यान-प्रक्रियाद्वारा इसे विश्राम मिलता है, इससे यह आपकी दीर्घकालतक सेवा कर सकता है।

भोजनका अनुशासन—यहाँतक कहा गया है कि मनुष्यका स्वास्थ्य उसके खानेपर ही आधारित है। इस सन्दर्भमें विटामिन 'सी' का बड़ा महत्त्व है। यदि उचित भोजनके मुख्य बिन्दु जाननेका प्रयास किया जाय, जो ये प्रमुखरूपसे तीन ही हैं—(१) भूख लगे तभी खाना, (२) जो आपके शरीरके अनुकूल हो, वही खाना और (३) कम खाना। एक बात सदैव स्मरण रखनेयोग्य है कि 'पेटमें दाँत

नहीं होते'।

हँसना—'हँसना सबसे अच्छी दवा। आजकल भारत तथा सम्पूर्ण विश्वमें ऐसे क्लब बन रहे हैं, जहाँपर लोग मिलकर हँसते हैं। हँसनेको इंटरनल जोगिंग भी कहा जाता है, जिससे पूरे शरीरका व्यायाम हो जाता है। यदि आप ऐसा व्यक्तित्व बना चुके हैं कि आपके लिये हँसना असम्भव है, तो 'मेकेनिकल' तरीकेसे हँसें, मगर हँसें जरूर! नारमन कजिन्सने अपनी पुस्तकमें इसे रोग-निधनका एक महत्त्वपूर्ण साधन बताया है।

हमारा शरीर अद्भुत चमत्कारी और स्वत: संचालित मशीन है। इसकी देखभाल करना हमारा स्वयंका ही कर्तव्य है। इसे न तो हम किसी डॉक्टर या वैद्यको हस्तान्तरित कर सकते हैं और न ही किसी औषधिके सहारे छोड़ सकते हैं। इसमें मुख्य बात यह है कि इसे निरोगी रखनेके लिये रोगकी रोकथाम आवश्यक है। इससे हम अपने जीवनका पूर्ण आनन्द उठा सकते हैं। अस्वस्थ व्यक्ति किसीकी सहायता नहीं कर सकता है। वह तो स्वयं ही दूसरोंपर आश्रित होता है। शरीरके विभिन्न संकेतोंका आदर करते हुए हमें समय रहते ही विश्राम करना, ध्यान लगाना, उपवास करना, हँसना आदि क्रियाएँ करनी चाहिये। हम हर समय मानसिक बोझ ढोये रहते हैं, जो हमारे स्वास्थ्यपर विपरीत प्रभाव डालते हैं। इस संदर्भमें यदि इतना ही याद रखा जाय तो हितकर होगा कि यह संसार हमारेसे पहले भी था और हमारे बाद भी रहेगा, तो फिर अभी उसे उसी रूपमें रहने दो, प्रकृतिके विपरीत कार्योंसे संघर्ष उत्पन्न होता है और यहाँसे रोगोंका प्रारम्भ होता है। जीवन अमूल्य है और इसका मुख्य स्वरूप ही स्वास्थ्य है। शरीर आपका है और स्पष्ट शब्दोंमें कहा जाय, तो यदि शरीर नहीं तो आप भी नहीं।

'मैं परमप्रभाका लघुकण हूँ'

(श्रीसनातन कुमारजी वाजपेयी)

मैं परम-प्रभाका लघुकण हूँ, पर घिरा हुआ अँधियारोंमें।
संसारी बनकर डोल रहा, फिर रहा असद् गलियारोंमें॥

नभ, अनिल, अनल, जल, वसुधाने
मिलकर मेरा शृंगार किया।
शब्दोंकी रुनझुनमें उलझा
रस, रूप, गंधसे प्यार किया॥
मद, मान, मोहकी सरितामें, ले नाव व्यस्त पतवारोंमें॥
दुःख-सुखके झूलोंमें झूला
मस्तीमें नित, फूला रहता।
सत, रज, तामसके रंगोंमें
रँगकर निजको भूला रहता।
माया नगरीका यह वैभव, मोहित करता शतधारोंमें॥
आशा, ममताकी डोरीसे
निज मनको कसकर बाँध लिया।
चिन्तामणि ठुकराई जीभर
भौतिक मणि, मोती थाम लिया॥
तृष्णाकी अविरल धारामें, संज्ञा पाई लाचारोंमें॥

मन, बुद्धि, चित्तके आँगनमें
नित मना रहा मैं दीवाली।
अहमितिके पथका राही बन,
सब ओर निरखता हरियाली॥
दस अश्वोंके रथपर राजित, सुख खोज रहा बाजारोंमें॥
मैं भूल गया निजका उद्गम
जिससे मैंने गति, मति पाई।
इस झूठे जगमें, रमा हुआ।
अब तक न तनिक उपरति आई॥
कपड़े रँगकर मैं संत बना, पर रमा जगतके नारोंमें॥
मानवका मैंने तन पाया
पर इसका मर्म न जान सका।
धर्मात्मा जगमें कहलाया
पर सच्चा धर्म न जान सका॥
साँसोंकी सरगम टूट रही, लुट गई असद् बटमारीमें॥

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ श्रीप्रह्लादजी स्मरण-भक्तिके आचार्य हैं। सच्चा स्मरण उसे कहते हैं कि जब अपने नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, मन, बुद्धि आदिके विषय केवल इष्टदेव ही हों। नेत्रसे यदि श्वान दिखायी पड़ा, हमने उसे नीच समझकर उसको मारा—तिरस्कृत कर दिया तो हमारा स्मरण खण्डित हो गया। प्रभु ही सबरूपोंमें हैं, फिर चाहे वह स्थावर हो या जंगम। जब तलवार, विष, अग्नि, सिंह, हाथी आदिको प्रह्लादजीने अपना इष्ट ही माना और पूर्ण विश्वासके साथ माना तब तलवार कैसे काटे? विष कैसे मारे? अग्नि कैसे जलाये? सिंह कैसे खाये? हाथी कैसे कुचले? प्रभुने भक्तोंकी वाणीको सत्य तो किया ही ब्रह्माके वरदानको भी मिथ्या नहीं होने दिया। 'खम्भमें भी हैं' अतः खम्भसे ही प्रकट हुए। प्रभुने अपनी वाणीको भी सत्य किया। **'यदा यदा हि धर्मस्य०'**—जब अधर्मका अभ्युत्थान और धर्मकी ग्लानि होगी तो उस समय धर्म-संस्थापनार्थ, दुष्ट-विनाशनार्थ, भक्तरक्षार्थ मैं प्रकट होता हूँ, अवतार लेता हूँ। प्रभुकी यह वाणी भी सत्य हुई। महाभागवत प्रह्लादके उपदेशोंका सार यह है कि जबसे सुधि-बुधि हो, तभीसे वैष्णव धर्मका आचरण करना। वृद्धावस्थामें भजन करूँगा—ऐसा नहीं सोचना चाहिये। देह नाशवान् है, इससे अविनाशी प्रभु-प्रेम प्राप्त करना ही बुद्धिमानी है, उत्तमोत्तम व्यापार है। भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये देवत्व, ऋषित्व, ब्राह्मणत्व आदिकी अपेक्षा नहीं है। दैत्य, दानव, शूद्र, चाण्डाल, स्त्री आदि सभीको भगवान्‌की शरणमें जानेका, भक्ति करनेका अधिकार है।

❀ नृसिंहकी स्तुति करते हुए प्रह्लादजीने कहा—'ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, सिद्ध, ऋषि, मुनि, देवोंने वेदवाणीसे आपके विशिष्ट गुणोंको लगातार विस्तारपूर्वक वर्णन किया, पर आप प्रसन्न नहीं हुए। वही प्रभु मेरी स्तुतिसे कैसे सन्तुष्ट होंगे, क्योंकि मैं एक तो बालक अर्थात् अज्ञानी दूसरे दैत्य अर्थात् तामसी। (यह श्रीप्रह्लादजीका महान् दैन्य है।) विद्या, तप, तेज, रूप, बल, ऐश्वर्य, धन, परिवार, उच्चकुलमें जन्म, बुद्धि आदि विशिष्ट बारह गुण आपको प्रसन्न करनेके लिये पर्याप्त नहीं हैं, परंतु भक्तिमात्रसे आप सर्वगुणहीन तामसी पशु गजेन्द्रके ऊपर भी प्रसन्न हो गये। (यह मैं मानता और जानता हूँ) उक्त बारह उत्तम गुणोंसे युक्त कोई ब्राह्मण हो और भक्तिसे यदि विमुख है, तो उस ब्राह्मणसे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वाणी, कर्म, लोक, परलोक, प्राण आदिको भगवदर्पण कर दिया है; क्योंकि वह भक्त (चाण्डाल) अपनेको तथा अपने कुलको पवित्र करता है। अभक्त ब्राह्मण अहंकारयुक्त होनेके कारण केवल अपनेको भी पवित्र नहीं कर पाता है। प्रभो! आप करुणामय हैं। अज्ञानी पुरुषोंके द्वारा अपनी पूजा कराना नहीं चाहते हैं। स्वयं अपने लाभसे पूर्ण आप आत्माराम हैं। इतनेपर भी जो आपका पूजन या सम्मान करते हैं। उसका लाभ उन्हें पूजन करनेवालोंको अवश्य मिलता है। जैसे मुखका (बिम्बका) शृंगार करनेपर दर्पणके प्रतिबिम्बका शृंगार अपने-आप हो जाता है।

❀ मीन भगवान् बड़े-से-बड़े हो गये, पर भाषा उनकी नहीं बदली। अपने रहनेके लिये विस्तृत स्थान और रक्षाकी माँग करते रहे। इसी प्रकार यदि कदाचित् भक्त बड़ा हो जाय—सिद्ध हो जाय तो भी उसे दैन्यका त्याग नहीं करना चाहिये। बड़े-से-बड़े स्थानकी याचना करनी चाहिये। बड़े-से-बड़ा स्थान भक्तके लिये भगवत्-चरण हैं और भगवान्‌के लिये भक्तहृदय है। यही निर्भयता देते हैं। अन्यत्र तो भय है।

❀ भक्तिका आचरण करते हुए भक्तिको बढ़ाना चाहिये। दूसरोंपर कृपा करना उत्तम है, पर पहले अपने ऊपर कृपा करनी चाहिये। अपनेको कुमार्गसे बचाना, सन्मार्गमें ले जाना ही अपने ऊपर कृपा करना है। अपनेको कुमार्गमें ले जानेवाले ही आत्मघाती हैं। ऐसोंको सत्संग या भगवत्-कथा प्रिय नहीं होती है। इस प्रकार स्वयंको जानकर अपने द्वारा ही अपना उद्धार करना चाहिये। ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

आदर्श माता कौसल्या

(श्रीतुलसीरामजी शर्मा, एम०एस-सी०, एम०एड०)

इस सृष्टिका आधार नारी है। अतः नारीका महत्त्व निर्विवादरूपसे स्वीकार्य है। आदिदेव शिवका अर्धनारीश्वररूप इसी तथ्यको प्रमाणित करता है। नारी नरका तेज धारण करती है, भ्रूणको अपने गर्भमें अपने रक्तसे निर्मित करती है। पृथ्वीपर आनेपर शिशुको अपने अमृतमय दुग्धसे पोषित करती है। उसे बड़ा करती है, संस्कार देती है। अतः सन्तानपर उसका अधिकार पितासे अधिक होता है। सन्तान उसकी चिर ऋणी रहती है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें माता कौसल्याके मुखसे इस तथ्यको बहुत स्पष्टरूपसे कहलवाया है। श्रीरामकी सौतेली माँ कैकेयी अपने पति महाराज दशरथसे दो वरदान माँग लेती है कि अयोध्याका राज्य भरतको दिया जाय और रामको चौदह वर्षतक संन्यासी-रूपमें वनमें रहनेका आदेश दिया जाय। दशरथजी अपने वचनके पालन और निरपराध रामको वनवास देनेके दुःखकी दुविधामें व्याकुल हो जाते हैं। कौसल्यानन्दन राम पिताके वचनका पालन करनेको सहर्ष तैयार हो



जाते हैं और अपनी माता कौसल्यासे वन जानेकी आज्ञा लेने उनके पास आते हैं। माता कौसल्या वनवासका समाचार सुनकर निकट वियोगसे इतनी व्यथित हो जाती हैं कि उनका मातृत्व उनके विवेकपर हावी हो जाता है और वे रामको वन जानेसे मना करती हैं। उन्हें केवल पिताने वनवासकी आज्ञा दी, इतना ही ज्ञात हो पाया था, अतः कह उठती हैं—*'जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥'* थोड़ी देरमें उनकी व्याकुलता शान्त होती है; सोचती हैं, यह मैंने क्या किया? मैं पुत्र-मोहमें अपने पतिव्रतधर्मका उल्लंघन कैसे करने लगी? श्रीरामसे पूछती हैं कि पिताने वन जानेका दण्ड दिया, पर तुम्हारा अपराध क्या है? श्रीराम कहते हैं—'आपका पुत्र पिताके प्रतिकूल चल ही नहीं सकता।' माता पूछती हैं फिर कारण क्या है? श्रीरामने कहा कि 'माँ कैकेयीकी इच्छा है, उन्होंने पिताजीसे वचन ले लिया कि भरतको राजतिलक हो और मैं चौदह वर्षके लिये वन जाऊँ।' तब माता कौसल्या सोचती हैं कि मुझे अपने पतिव्रतधर्मके पालनके लिये उनके वचनको सत्य रखना होगा। यदि मैं रामको वन जानेसे रोकती हूँ तो मेरा पतिव्रतधर्म नष्ट होगा। सपत्नी कैकेयीसे विरोध होगा। भरत और राममें बन्धु-विरोध होगा। मेरा रामको वन जानेसे रोकना हर प्रकारसे परिवारका विघटनकारी होगा। और वे सँभलकर कह उठती हैं—*'जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥'* अर्थात् यदि पिताकी आज्ञा और उसपर माता (कैकेयी)-का अनुमोदन है, तब तो तुम्हारे लिये वनवास सैकड़ों अवधके समान है। अवश्य वनको जाओ। बस, मुझे भुला मत देना। मैं तुम्हारी यादमें जीती रहूँगी।

रामके वनगमनका समाचार पाकर सीताजी माता कौसल्याके पास आ जाती हैं और कहती हैं, माता! मुझे भी साथ जानेकी आज्ञा दीजिये। माता कौसल्या कहती हैं—'बेटी! तू वनकी कठिनाइयाँ सहनेयोग्य नहीं है। कंटकयुक्त ऊँचे-नीचे रास्ते, भयानक वन, जंगली

पशुओंका भय; तू नहीं सह पायेगी; तूने तो कभी समतल धरतीपर चलनेका अभ्यास नहीं किया, तू कंकड़ों-पत्थरोंपर नंगे पैर कैसे चलेगी, तू यहीं रह। जब मनमें आये, अपने नैहर चले जाया करना, जब चाहे यहाँ रहना। रामकी अनुपस्थितिमें तू ही मेरा जीनेका अवलम्बन रहेगी। तब सीताजी कहती हैं—'माँ! आप अपने पतिव्रतधर्मका पालन करनेके लिये अपने एकमात्र प्राणप्रिय पुत्रका त्याग करनेको तैयार हैं, तब मुझे भी पतिव्रत-धर्मका पालन करनेकी आज्ञा दीजिये। तब माँ कौसल्या अपना हित छोड़ सीताजीको अपना धर्म पालन करने (साथमें जाने)-की आज्ञा दे देती हैं। यहाँ भी पुत्रवधूपर पुत्रीवत् प्रेम है माता कौसल्याका, परंतु वे पतिव्रत-धर्मके पालनसे सीताको विचलित नहीं होने देती हैं।

इसी बीच राम-वनगमनका समाचार सुनकर लक्ष्मण आ जाते हैं और साथ जानेकी आज्ञा श्रीरामसे ले लेते हैं। अपनी माता सुमित्राजीसे भी प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। जब चलनेको होते हैं तो माता कौसल्या श्रीरामको आज्ञा देती हैं, 'तुम मेरे लक्ष्मणको साथ ले जा रहे हो, ये तुम्हारा दायित्व होगा, जैसे साथ ले जा रहे हो, वैसा ही लक्ष्मण मुझे लौटाना, लक्ष्मणके बिना अयोध्या मत आना।' यहाँ माता कौसल्याका लक्ष्मणपर प्रेम स्पष्ट झलकता है। साथ ही श्रीरामको बड़ा भाई होनेका दायित्व स्मरण कराती हैं। यह माता कौसल्याके उदार हृदयकी विशालताका परिचायक है। माता कौसल्याको यह शिकायत नहीं है कि कैकेयीने रामको वनवास दिया और अपने पुत्र भरतको राज दिलाया। उन्हें भरतके राजा होनेपर कोई अन्तर नहीं दिखता। उनका भरतपर भी उतना ही स्नेह और विश्वास है, जितना रामपर है।

महाराजा दशरथके प्राणत्यागके पश्चात् गुरु वसिष्ठ भरतको बुला लेते हैं। भरत जब अयोध्या पहुँचते हैं और अपनी माँ कैकेयीद्वारा श्रीरामको वनवास और पिताकी मृत्युका समाचार जानते हैं तो उन्हें बहुत संकोच होता है। वे माता कौसल्याके पास आकर व्याकुल हो उनके चरणोंमें गिर पड़ते हैं। माता उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लेती हैं। गोदमें बिठा लेती हैं और इतना सुख अनुभव करती हैं, जैसे राम ही लौटकर आ गये हों। भरत कहते हैं—'माँ! मुझे संसारके हर प्रकारके पाप-दोष लगें, यदि मेरी राय माता कैकेयीके इन वरदानोंके माँगनेमें हो। या मुझे इसकी जानकारी हो।' माता कौसल्या कहती हैं—'बेटा भरत! मुझे विश्वास है कि तुम रामके प्रतिकूल कोई कार्य स्वप्नमें भी नहीं कर सकते। तुम्हें वही दोष देंगे, जिन्होंने गुरुजनों और साधुओंका सत्संग न किया हो, जो विवेकहीन हों।' गोस्वामी तुलसीदासने माता कौसल्याके व्यवहारका वर्णन बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें किया है, वे लिखते हैं—

मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥
सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥
माताँ भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥

माता भरतको धीरज बँधाती हैं, कहती हैं—'बेटा! महाराज दशरथ स्वर्ग सिधार गये, राम-लक्ष्मण वनमें हैं, अब तुम ही हम सबका सहारा हो। अत: धैर्य धारण करो, पिताका क्रियाकर्म करो। वृथा ग्लानि मनमें मत करो, यह घटना तो विधिका विधान है—इसमें किसीका दोष नहीं, न तुम्हारा और न कैकेयीका।

तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥

भरतपर माताका विश्वास देखिये—

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

पिताके दाह-संस्कारके पश्चात् राजसभामें भरतको बुलाकर उन्हें गुरु वसिष्ठ मंत्रियों एवं राजमाताकी सम्मतिसे राज्य ग्रहण करनेको कहते हैं तो भरत राज्य

सँभालनेको सहमत नहीं होते। तब माता कौसल्या कहती हैं 'बेटा भरत! संकोच छोड़ राज ग्रहण करो, इससे रामको भी सुख मिलेगा। तुम चाहो तो रामके लौटनेपर राज्य उन्हें दे देना। अपने पिताके आदेशका पालन रामने वन जाकर किया। तुम राज्य ग्रहण करके पालन करो। राज्य बिना राजाके एक दिन भी सुरक्षित नहीं होता।'

माता कौसल्याको भरतके राज्य ग्रहण करनेपर ही सुख दिखता है, पर भरत श्रीरामको मनाने एवं वनमें जानेका अनुरोध करते हैं। गुरु, सभासद् तथा पुरजन-परिजन सभी इस निर्णयपर सहमत हो जाते हैं। भरत विश्वासपात्र अधिकारियोंको नगर एवं कोषकी व्यवस्था एवं सुरक्षा सौंपकर सपरिवार वन जानेको तैयार होते हैं। परंतु माता कैकेयीको साथ ले जानेसे मना करते हैं। तब माता कौसल्या बड़ी चतुराईसे भरतको आदेश देती हैं। कहती हैं—'भरत! कैकेयी मेरे साथ जायँगी। वे श्रीरामकी माँ हैं, जिन्हें तुम मनाने जा रहे हो अर्थात् रामकी चहेती माँका अपमानकर रामको मनाने जानेकी कैसे सोच रहे हो? वह अवश्य साथ जायँगी, यह तुम्हारी माँकी (मेरी) आज्ञा है।' भरतको यह आदेश मानकर कैकेयीको साथ ले जाना पड़ता है। यहाँ माता कौसल्याका अपनी सपत्नीके प्रति सरल एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार अनुपमेय है।

जब रामको मनाने भरत सपरिवार, सपरिजन वनमें पहुँच जाते हैं तो भरत माता कौसल्यासे कहते हैं—'माता यदि आप मुझपर भी भैया रामके समान ही प्रेम करती हैं तो भैयाको आदेश दो कि वे अयोध्या लौट चलें। अपना राज्य सँभालें। पिताका वचन मैं १४ वर्ष वनवासकर पूरा करूँगा। तब माता कौसल्याका उत्तर था कि 'बेटा! मैं अपने पुत्र-स्नेहमें पड़कर अपने किसी पुत्रको धर्म एवं कर्तव्यके मार्गसे विचलित होनेका आदेश नहीं दे सकती हूँ। मैंने तुम्हें भी राज्य ग्रहण करनेको कहा था, पर तुमने धर्म रामको मनाना समझा, तो मैंने तुमको बाध्य नहीं किया था।'

माता कौसल्या भरतसे कह तो देती हैं कि मैं रामको बाध्य नहीं करूँगी, पर उन्हें भरतकी चिन्ता सताती रहती है। वे राजा जनककी महारानी सुनयनासे निवेदन करती हैं कि रामको मनाते समय भरतका ध्यान रखकर निर्णय लें, यदि निर्णय भरतकी इच्छाके विपरीत हुआ तो भरत टूट जायगा। भरत बहुत भावुक है। अर्थात् माता भरतका रामसे अधिक ध्यान रखती हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें देखिये—

लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोच॥

माता कौसल्याके हृदयकी विशालता, सरलता तथा समता अकथनीय है। वे एक आदर्श माँका अवतार हैं। वे एक आदर्श माँके साथ आदर्श पत्नी भी हैं। महाराज दशरथकी सबसे विश्वासपात्र महारानी हैं। दशरथ भले ही कैकेयीके सौन्दर्यपर मुग्ध रहे हों, पर जो उनका विश्वास कौसल्यापर था, वह अन्यपर न था। वह रामवनगमनसे अपने प्राणत्याग-तकका समय महारानी कौसल्याके कक्षमें ही बिताते हैं और अपने अन्तर्मनकी पीड़ा तथा अन्धे ऋषिद्वारा शाप देनेकी घटना कौसल्याको ही बताते हैं।

माता कौसल्याका व्यवहार अपनी सपत्नियों (सौतों) कैकेयी तथा सुमित्राके साथ सदैव सगी बहनों-जैसा रहा। उन्हें इस बातसे कभी ईर्ष्या न हुई कि राजा दशरथ कैकेयीको अधिक चाहते हैं। रामको वन भेजने एवं भरतको राजतिलक माँग लेनेपर भी उन्हें कैकेयीके प्रति कोई रोष नहीं होता, वे रामको माता कैकेयीकी आज्ञा माननेको कहती हैं। जबकि कैकेयीके मनमें मन्थराके बहकानेपर सौतिया डाह पैदा हो जाता है और वे कौसल्याका बुरा करनेपर तुल जाती हैं, पर कौसल्याने सदा कैकेयीका पक्ष साधा।

आज भी यदि हर माता कौसल्याकी अनुयायी बन जाय तो अवश्य ही राम-जैसे आज्ञाकारी, धार्मिक और मर्यादापालक पुत्र पैदा होंगे और माता-पिताकी वृद्धावस्थामें होनेवाली उपेक्षाकी समस्या ही उत्पन्न न होगी। परिवारजनोंमें स्नेह होगा। परिवार स्वर्ग बन जायँगे।

त्यागकी महिमा

(प्रो० (डॉ०) श्रीजमनालालजी बायती)

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है तेरा।
तेरा तुझको सौंपूँगा क्या लागे मेरा॥

(कबीर)

भय नहीं अपितु प्रेम ही सच्चे त्यागका स्रोत है तथा त्यागके समान कोई सुख नहीं है। (महाभारत)

जो मनुष्य त्याग करके दुःख मानता है, उसने सही अर्थोंमें त्याग किया ही नहीं है। सच्चा त्याग सुख देता है एवं मनुष्यको ऊँचा उठाता है। (महात्मा गाँधी)

श्रेयके लिये मनुष्यको सब कुछ त्याग करना चाहिये—जयशंकर प्रसाद

त्यागके पर्याय माने जा सकते हैं—अपरिग्रह, असंग्रह, विसर्जन। अंग्रेजीमें इन्हें Give up शब्दका पर्याय माना जा सकता है, पर अंग्रेजीमें इससे भी अधिक सही अर्थवाला शब्द है Sacrifice, असलमें Sacrifice शब्द ही त्यागका सही पर्यायवाची शब्द है। विसर्जनके बिना अर्जन तथा अर्जनके बिना विसर्जनका अस्तित्व ही नहीं सोचा जा सकता, दोनों ही संगी-साथी हैं। इसीलिये जगदीशचन्द्र बोस कहते हैं कि त्याग तथा उपलब्धि एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। मनुष्य ग्रहण किये हुए भोजनको मलमूत्रके रूपमें त्याग देता है, यदि वह ऐसा न करे तो व्याधिग्रस्त हो जायगा। कमाया हुआ धन सत्पात्रोंमें बाँटना अर्थात् उसे त्यागना ही उसकी रक्षा है। नदी, तालाब एवं जलाशय आदि पानीसे भरते हैंऔर उनसे सिंचाईके लिये जल छोड़ा जाता है, सिंचाईके लिये जलाशयसे पानीका बहाव ही उसकी रक्षा करता है। यदि पानीका संचय ही होता रहे तो पानी गन्दा हो जायगा। बदबू फैलायेगा, उसके आस-पाससे निकलना कठिन हो जायगा। अपनी गोदमें पानी संग्रहकर, कष्ट सहकर भी तालाब या जलाशय प्रसन्न होता है। इसी भाँति दीपशिखा अपना अंग जलाकर भी जनसाधारणको प्रकाश उपलब्ध कराती है। इसीलिये कहा है कि संग्रह अनर्थकी जड़ है तथा त्याग या दान उससे बचनेका रास्ता है। तैत्तिरीय उपनिषद्में तो यहाँतक कहा गया है कि दान करना उत्तम कार्य है, पर संकोचके साथ या बिना जानकारी दिये दान करना तो और भी उत्तम कार्य है।

इस विवेचनासे स्पष्ट है कि मानवीय गुणोंमें त्यागका बहुत ऊँचा स्थान है, पर त्यागवृत्ति गिने-चुने लोगोंमें ही पायी जाती है। 'त्याग करना' कहना जितना आसान है, उसका पालन उतना ही कठिन है। त्याग अनेक वस्तुओंका होता है, यथा—धन, कपड़ा, भोजन, मकान, नींद, परिवार, स्त्री, पद, शरीर-मोह आदि। त्यागकी कोई सीमा ही नहीं है, इसका क्षेत्र विशाल है और फिर वैराग्यहीन त्याग, त्याग ही नहीं कहा जाता है। एक या अन्य कारणसे किसी भी प्रकारका त्याग सरल कार्य नहीं है, पर जिन्होंने इस असम्भव कार्यको—त्यागको सही अर्थोंमें समझ लिया है, वे महापुरुष बन गये हैं। इसलिये जितने महापुरुष हुए हैं, उन्होंने सांसारिक सुखोंको अपने पास नहीं फटकने दिया है—वे विभिन्न प्रकारके सुखोंसे दूर ही रहे।

व्यावहारिक जीवनमें त्यागवृत्तिको अपनाना अत्यन्त कठिन कार्य है। संयमी तथा आत्मनियन्त्रणके धनी लोग इस कठिन कार्यको भी सरल बना लेते हैं। त्यागमें ही जीवन है; जो त्याग नहीं कर सकता, उसे जीनेका हक ही नहीं है। प्रज्ञाके पुजारी, जिन्होंने यह जान लिया कि क्या थे हम, आज क्या हैं तथा कल क्या होंगे? कहाँ जाना है? साथ क्या जायगा? ऐसे विवेकी पुरुषोंने त्याग किया है। चीनी जीवन-दर्शनके अनुसार जो जितना अधिक त्याग या दान करेगा, उसे समाजसे उतना ही अधिक मिलेगा। किसीने परिवार, किसीने देश, किसीने स्त्री, किसीने धनका त्यागकर इतिहासमें नाम कमाया है। इतिहासके विद्यार्थी जानते हैं कि दधीचिका अस्थि-त्याग, मर्यादापुरुषोत्तम रामका राज्य-त्याग, महात्मा बुद्धका परिवार-त्याग, पन्ना धायका पुत्रत्याग, भामाशाहका धन-त्याग, अशोकका शस्त्र-त्याग आदि त्यागके आदर्श उदाहरण हैं। सुदामाके लिये बिना उनको जानकारी दिये कृष्णद्वारा किया त्याग अनुकरणीय है। सुभाष, आजाद,

भगतसिंहने देश-प्रेमके वशीभूत होकर अपने प्राणोंकी आहुति दे दी, मृत्युको गले लगाया, मृत्युसे प्यार किया। वे मृत्युके समाचार या आदेश सुनकर खुश होते थे। ये देशके लिये त्यागके कुछ अनुपम उदाहरण हैं। त्यागसे ही मनुष्य उच्चतम शिखरपर पहुँचा है। इस मानव-जीवनमें त्यागसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। जिन्होंने इस कठोर सत्यको समझ लिया है, उनकी रायके अनुसार त्यागके अतिरिक्त न वास्तविक आनन्द या सुख मिल सकता है, न ईश्वरीय कृपा।

त्याग करनेवाले इन सभी लोगोंमें एक सामान्य लक्षण यह था कि इन्द्रियाँ इनके नियन्त्रणमें—वशमें थीं, ऐसा करके ही वे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके। इसीलिये वेदव्यासजी कहते हैं कि त्यागका रहस्य इन्द्रियसंयम है।

बाहर तथा भीतर जो कुछ भी मनको फँसानेवाली चीजें हैं, उन सबको छोड़नेसे मनुष्य त्यागी बन सकता है। केवल घरको छोड़ देनेसे त्यागकी सिद्धि नहीं होती है। तभी तो भगवान् महावीरके शिष्य आनन्दने त्यागको सही रूपमें समझा, जीवनमें उसका महत्त्व स्वीकार किया, पर सही अर्थमें स्वीकार करनेमें असमर्थता बतायी और सुख-सुविधाओंका उपभोग करनेमें एक मर्यादा बतायी। उसने एक निश्चित मात्राके बाद धन-धान्य, मणिमुक्ता, वाहन, पशु, क्षेत्र आदिपर स्वामित्वका परित्याग किया, उसने अपने पहनने-ओढ़नेके वस्त्र तथा काममें आनेवाले बर्तन आदिपर भी मर्यादा लगा दी। सुख-सुविधाओंपर पाबन्दी, आवश्यकतासे अधिक वस्तुओंका त्याग, उपभोगकी वस्तुओंको सीमित मात्रामें ही रखना धर्म है, इसीको ममत्व-त्याग कहा जाता है।

इसी भाँति वेदव्यासजी कहते हैं कि कुलकी रक्षाके लिये मनुष्यका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, देशकी रक्षाके लिये ग्रामका तथा आत्माकी रक्षाके लिये पृथ्वीका त्याग कर देना चाहिये। वे आगे कहते हैं—कोई मनुष्य त्यागके बिना सुख नहीं पाता, त्याग किये बिना परमात्माको नहीं पा सकता तथा त्याग किये बिना निर्भय होकर नहीं रह सकता। इसीलिये सब कुछ त्यागकर सुखी हो जाना चाहिये।

पूर्वकालमें त्याग तथा दानको मोटे तौरपर समान समझा जाता था। सम्पत्तिका दान धर्म माना जाता था तथा जो दिया जाता था, वह दान समझा जाता था। समय बीतनेके साथ-साथ इसमें विकृति आ गयी। विकृति यह कि जो जितना अधिक दान करेगा, वह उतना ही बड़ा दानी होगा। दूसरे शब्दोंमें धर्म पैसेसे बिकने लगा। यह स्थिति दुःखदायी थी, अपरिग्रहकी मूल भावना ही समाप्त हो गयी। धर्म धनका पर्याय हो गया तो फिर गरीब धर्मके पास भी नहीं फटक सकेंगे।

कालान्तरमें धर्मके दो रूप व्यवहारमें आये—लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक कर्म लोकप्रवृत्तिसूचक है तो लोकोत्तर कर्म मुद्रात्यागसूचक। राहगीरोंके लिये प्याऊ लगवाना, भूखेको भोजन उपलब्ध करवाना आदि लौकिक कार्य हैं। आग्रह यह रहा है कि लौकिक तथा लोकोत्तरको न मिलाओ। पर यदि ऐसा किया गया, तो धर्मका सम्बन्ध केवल धनी या अमीरसे ही रह जायगा, जो त्रुटिपूर्ण या असंगत ही माना जायगा। धर्मका सम्बन्ध न अमीरसे है तथा न ही मात्र गरीबसे; इसका सम्बन्ध तो धनी एवं गरीबकी आत्मासे है।

आधुनिक जीवनमें अर्थका महत्त्वपूर्ण स्थान है, मनुष्यकी प्रत्येक आवश्यकताकी सन्तुष्टिके लिये धन चाहिये, धनके अभावमें आज मनुष्य एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। पर धन ही सब कुछ हो—यह दृष्टिकोण भी अवांछनीय है। अतः अर्जनके साथ ही विसर्जन भी महत्त्वपूर्ण है। विसर्जनका अर्थ है त्यागवृत्ति। त्यागमें सुख निश्चित है, परंतु त्यागका अर्थ कायरता या असहायताकी अवस्थासे नहीं लिया जाना चाहिये। विसर्जन या त्याग फिर भले ही धनका हो या समयका हो या अन्य किसी वस्तुका, अर्थ देना विसर्जन नहीं, परंतु धनके स्वामित्वका त्याग ही विसर्जन है। बारीकीसे देखें तो देना तथा छोड़नामें अन्तर है। यद्यपि छोड़नेके साथ देना भी सम्मिलित है। इसको यों समझा जा सकता है। मान लीजिये कि कोई व्यक्ति अपनी आमदनीकी एक प्रतिशत राशिका विसर्जन करता है, इस विसर्जनमें स्वामित्वका त्याग सम्मिलित है या वस्तुसे सम्बन्ध-विच्छेदकी कामना या वृत्तिका त्याग है। इसका अर्थ है दानमें देनेकी व्यवस्था करना तो लौकिक पक्ष है और स्वामित्वका हस्तान्तरण लोकोत्तर पक्ष है। इस प्रकार त्यागवृत्तिको सही अर्थोंमें लेना-समझना महत्त्वपूर्ण है।

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❁ नाम-जपकी महिमा अपार है। वैश्य-परिवारकी एक वृद्धा माताजीका प्रसंग सुनाते हुए महाराजजीने बताया कि एक बार आश्रमके किसी कार्यसे उन्हें ग्वालियर जाना हुआ। जिस घरमें उन्हें जाना था, वहाँका पता-ठिकाना नहीं होनेसे एक स्थानीय परिचितके साथ वहाँ पहुँचे। वहाँ उनके स्वागतहेतु सजावट आदि देखकर चकित हुए और पूछा कि हमारे आनेकी सूचना कैसे मिली? बच्चोंने कहा कि दादीने सुबह ही बता दिया था कि महाराजजी यहाँके लिये चले हैं, दोपहरतक पहुँच जायँगे। चकित होकर उस वृद्धासे पूछा कि आपको कैसे मालूम हुआ तो उसने कहा कि मैं तो राम-राम करती हूँ और जिधर मुँह कर लेती हूँ, उधरका दृश्य दीखने लगता है। बालकोंने भी इस बातकी पुष्टि की और बताया कि हमलोग दादीसे पूछते हैं कि चतुर्भुज भगवान्‌ने आज किस रंगकी पोशाक धारण की है तो ये मन्दिरकी ओर मुख करके रंग बता देती हैं और जाकर देखनेसे भगवान्‌की पोशाकका वही रंग निकलता है। यह भगवन्नाम-जपका ही प्रभाव है कि बिना पढ़ी-लिखी उस सीधी-सादी वृद्धाको ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी।

❁ ललितपुरमें एक प्राचीन नृसिंह मन्दिर है। वहाँ गोपालदासजी महाराज निरपेक्ष सन्त हुए, जो भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करते हुए ठाकुरजीकी सेवा करते थे। मन्दिरके निकट ही एक चौकोर कुआँ (चौपरा) था, जिसके जलका महाराजजी उपयोग किया करते। वांगपुरके राजा साहबकी रानी ललितादेवी परम सुन्दरी स्त्री थीं, जिनके सौन्दर्यकी ख्याति पूरे अंचलमें थी। संयोगवश उन्हें श्वेत दाग हो गये और अनेक प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी कोई लाभ नहीं हुआ। राजाका भी धीरे-धीरे उनके प्रति उदासीन भाव हो गया। दुखी होकर रानी एक रात्रिमें महलसे निकलकर आत्महत्याके विचारसे उस कुएँके पास आयीं। महाराजजीने धूनेपरसे ही पूछा कि कौन है? रानीने रोते हुए अपनी व्यथा सुनायी। महाराजजीको उसपर करुणा आ गयी और उन्होंने कहा कि इस चौपराके पानीसे स्नान कर ले, किंतु अब शेष जीवनमें सांसारिक विषय-भोगसे दूर रहकर भजन करना होगा। रानीने स्वीकार किया और उस कुएँके जलसे स्नान करते ही उनकी कंचन-काया हो गयी। वे महल लौट गयीं और प्रातःकाल राजा उनका सौन्दर्य देखकर चकित रह गये। पूरी बात जानकर राजाको भी वैराग्य-भाव उदित हो गया और दोनोंने शरणागत हो भगवच्चिन्तनमें जीवन बिताया। रानी ललिताके नामपर ही ललितपुरका विकास हुआ है।

❁ वृन्दावनमें एक सन्त हुए, जिन्हें मौनी बाबाके नामसे लोग स्मरण करते हैं। यह उन दिनोंकी घटना है, जब राज्यसत्ता राजाओंके पास होती थी। श्रीराधा-वल्लभलालजीके मन्दिरमें जो अति आकर्षक श्रीविग्रह है, उसका दर्शन अत्यन्त तन्मय-भावसे मौनीबाबा नित्य खड़े होकर करते रहते थे। उस समय उन्हें तन-मनकी सुधि भी नहीं रहती थी। एक दिन किसी राजघरानेसे रानी साहिबा दर्शनको पधारीं, इसलिये परम्परानुसार मन्दिरको पुरुषोंसे खाली कराया गया। मौनीबाबासे भी जानेको कहा गया, किंतु उन्हें दर्शनकी तल्लीनतामें शरीरका भान ही नहीं था। उन्हें आदेशकी अवहेलना करते देखकर मन्दिरके सेवक एक जलभरिया पहलवानने एक थप्पड़ जड़ दिया। उन्हें इसका भी भान नहीं हुआ। इस बीच रानी दर्शन करके चली गयी। कुछ दिनों बाद यमुनाजीसे जल भरते समय एक मगरमच्छने उस जलभरियाका पैर पकड़ लिया। अपने बलसें उस पहलवानने मगरमच्छको बाहर तो खींच लिया, किंतु वह कई दिनोंतक बीमार रहा। फिर उन्हीं सन्त मौनीबाबाकी कृपासे वह स्वस्थ हुआ। जब मौनीबाबाका परमधामगमन हुआ, तब उनके अत्यन्त दुबले शरीरको देखते हुए उन्हें जल-समाधि देते समय परम्परागत पत्थरोंकी जगह भिगोये चनेकी बोरियाँ शरीरसे बाँधी गयीं, ताकि जलजीवोंको कुछ खाद्य मिल सके। ऐसे निःस्पृह भगवद्भक्त प्रभुके प्यारे होते हैं।—'प्रेम'

पर्यावरण-चिन्तन—

भारतीय संस्कृतिमें पर्यावरण-संरक्षण

(श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी)

भारतके सांस्कृतिक धरातलपर पर्यावरणका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पर्यावरणके संरक्षणमें प्राचीन भारतीय परम्पराओंका विशेष योगदान है। हमारे मनीषियोंने प्रकृतिकी समग्र शक्तियोंको जीवनदायिनी स्वीकार करते हुए उन्हें देवत्वका स्थान प्रदान किया है। आजके भौतिक युगमें हमारी ये प्राचीन मान्यताएँ तिरोहित हो गयी हैं, जो प्रतीकरूपमें कभी हमारी सांस्कृतिक परम्पराओंकी सबल आधार स्तम्भ रही हैं। हमारे पूर्वजोंको पर्यावरणमें असन्तुलन होनेपर जगतीतलपर बढ़नेवाले खतरोंकी पर्याप्त जानकारी रही है। वे प्रकृतिको मनुष्यमात्रके लिये सर्वाधिक फलदायी मानते थे। इसीलिये प्रकृतिको जीवनका अभिन्न अंग मानते हुए उसकी पूजा-अर्चना करते थे। सन्त-पुरुषोंने इसी संस्कृतिको अपने आश्रमोंमें और उसके बाहर भी पल्लवित-पुष्पित किया। हमारे धर्मशास्त्रोंने मन्त्रोच्चारसे प्रकृतिको सम्बद्धकर उसे पवित्रता प्रदान की। धरतीको मातृवत् मानकर जल, हवा, नदियों, पर्वतों, वृक्षों और जलाशयोंका संरक्षण करनेकी व्यवस्था की गयी और कहा गया कि भूमिके दानसे और गौके दानसे जो लोक प्राप्त होते हैं, उन्हीं लोकोंको वृक्ष लगानेसे मनुष्य प्राप्त करता है।

वेदोंका सन्देश है कि मानव शुद्ध वायुमें श्वास ले, शुद्ध जलका पान करे, शुद्ध अन्न-फलका भोजन करे, शुद्ध मिट्टीमें खेले-कूदे और कृषि करे, तब ही वेद-प्रतिपादित उसकी आयु **'शं जीवेम् शरदः शतम्'** हो सकती है। वृक्ष-वनस्पतियाँ भगवान् नीलकण्ठका रूप हैं; क्योंकि वे स्वयं विषैली गैसोंको पीकर हमें प्राणवायु प्रदान करते हैं। अतः वृक्षोंको सींचना भगवान् शिवको जल चढ़ानेके समान है। वेदोंमें इस बातका संकेत है कि पीपलके नीचे बैठना स्वास्थ्यप्रद है तथा पलाश (ढाक)-के पेड़ दिन-रात सुगन्ध और प्राणवायु छोड़ते हैं। वृक्ष हमारी संस्कृतिकी धरोहर हैं। इसीलिये अनेक वृक्ष पूज्य माने जाते हैं। तुलसीको विष्णुप्रिया माना गया है। विष्णुपुराणमें सौ पुत्रोंकी प्राप्तिसे बढ़कर एक वृक्ष लगाना माना गया है। भक्त तथा भगवान्को तिलक लगानेके लिये चन्दन सर्वमान्य है। मत्स्यपुराणमें दस कुओं, बावड़ियों तथा तालाबोंसे भी बढ़कर वृक्ष लगानेको विशेष मान्य किया गया है। प्राचीनकालमें यदि अपरिहार्य कारणोंसे किसी वृक्षको काटना पड़ता था तो वृक्षसे क्षमा माँगनेका प्रावधान था। राजस्थानमें विश्नोई समाजद्वारा जोधपुर जिलेमें खेजड़ीके वृक्षको बचानेहेतु लोगोंने बलिदान दिये हैं। तुलसीका पौधा तो इतना पवित्र माना गया है कि हर भारतीय उसे घरमें लगाता है तथा उसके विवाहकी भी परम्परा भारतीय समाजमें रही है। हमारे ऋषि-महात्माओंके आश्रम वनखण्डोंमें स्थित रहे हैं। अनेक पेड़ोंके सम्बन्ध देवी-देवताओंसे माने गये हैं। पीपलमें विष्णुका वास माना गया है। नीमको शीतला माता कहा जाता है। बरगदको भगवान् शंकरका स्वरूप माना जाता है और तुलसीको विष्णुपत्नीके रूपमें स्वीकार किया गया है। वैशाखमें पीपल-पूजा, कार्तिकमें आँवला एवं तुलसी-पूजा, मार्गशीर्षमासमें कदम्बके वृक्षको पूजनेकी परम्परा रही है। पेड़ोंकी स्थितिपर भी विचार किया जाता है। नीमका पेड़ गाँवकी चौपालपर और पीपलका पेड़ गाँवके बाहर जलाशयके किनारे शोभायमान होता है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें यह भी उल्लेख है कि जिस वृक्षपर पक्षियोंके घोंसले हों तथा देवालय और श्मशान भूमिपर खड़े पेड़ोंको नहीं काटना चाहिये, जैसे—बड़, पीपल, आक, नीम आदि। सिन्धुघाटीकी सभ्यतामें प्राप्त मुहरोंपर अंकित चित्रोंसे स्पष्ट है कि सिन्धुघाटीके निवासी वृक्षोंकी पूजा करते थे। प्राचीनकालसे ही पेड़ोंको सींचनेकी परम्परा चली आ रही है। वैशाख महीनेमें भारतीय नारियाँ तथा बालिकाएँ पीपलके पेड़को सींचती हैं। इसके पीछे यही धारणा है कि ज्येष्ठ मासकी भीषण गर्मीसे इन पेड़ोंको बचाया जा सके। पेड़ोंके बचाव तथा संरक्षणहेतु गोचर भूमि, डोली और ओरण

आदि व्यवस्थाओंको क्रियान्वित किया गया, जिससे मन्दिरोंके पुजारी वन-संरक्षणमें अपनी भागीदारीका निर्वहन कर सकें।

वन्य जीव-जन्तु भी हमारे पर्यावरणके प्रमुख अंग माने जाते हैं। इनका सही सन्तुलन होनेपर पर्यावरण शुद्ध तथा स्वच्छ रहता है। इनकी सुरक्षाके लिये वन्य जीवोंको पूज्य मानकर इनकी पूजाका भी प्रावधान हमारी सांस्कृतिक परम्पराओंमें रखा गया है। भगवान्के दस अवतारोंमें चार अवतार पशुओं तथा जन्तुओंसे सम्बद्ध हैं, जैसे—मत्स्यावतार, वराहावतार, कच्छपावतार तथा नृसिंहावतार आदि। भारतीय संस्कृतिमें हाथी, वानर और नागपूजाकी व्यवस्था विशेषरूपसे की गयी है ताकि लोगोंमें सभी प्राणियोंके प्रति आस्था अक्षुण्ण बनी रहे। गायोंकी महत्ताको प्रकट करनेहेतु गोपाष्टमी, बछवारसका त्योहार मनाया जाता है। गाय किसानोंकी जीवनधारा है। कृषिभूमिमें उत्पादनको हानि पहुँचानेवाले चूहोंपर नियन्त्रण रखनेवाले सर्पोंके प्रति श्रद्धासूचक नागपंचमीका त्योहार मनाया जाता है। पशु-पक्षियोंके संरक्षणहेतु अनेक परम्पराएँ भारतीय समाजमें प्रचलित हैं। चींटीको आटा डालनेकी परम्परामें चीटियोंकी सुरक्षाकी व्यवस्था दी गयी है। मरे हुए जानवरोंसे फैलनेवाली गन्दगीको दूर करनेवाले कौओंके प्रति श्रद्धास्वरूप श्राद्धपक्षमें उनको भोजन खिलानेकी परम्परा है। विवाहके समय तोरण लगानेकी परम्परामें भी पक्षियोंको याद किया जाता है। तोरणपर प्रतीकात्मकरूपसे पक्षियोंकी आकृतियाँ बनायी जाती हैं। भोजनसे पहले एक रोटी अथवा पाँच ग्रास चींटी, कौए, कुत्ते आदिके लिये निकालकर उन्हें जीवित रखनेकी व्यवस्था प्रकट की गयी है।

'जल ही जीवन है' अतः जलके शुद्धीकरण एवं उसकी पवित्रता बनाये रखनेका प्रयत्न प्राचीन कालसे चला आ रहा है। जलको भारतीय समाजमें देवता माना गया है। जल-संरक्षणकी परम्परासे नदियोंको 'माता' का स्थान दिया गया है। इनकी पूजा की जाती है। गंगाजलको समस्त संस्कारोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कुआँ, बावड़ी, तालाब तथा झीलोंके निर्माणकी धार्मिक प्रथाएँ रही हैं। कहीं-कहीं गाँवोंमें आज भी जलस्रोतोंको गन्दा करनेपर सामाजिक प्रतिबन्ध रहता है। लोग शिवरात्रिपर हरिद्वारसे कावड़में गंगाजल लेकर कई मीलोंतक यात्रा करते हुए घर पहुँचते हैं। नदियाँ भूमिगत जलका स्तर ऊँचा उठाती हैं और प्राकृतिक सौन्दर्यमें वृद्धि करती हैं। पृथ्वीपर जलका तीन-चौथाई हिस्सा होते हुए भी पीनेयोग्य जलका हिस्सा ०.३३ प्रतिशत है। जनसंख्या-वृद्धिके साथ-साथ जलका संकट बढ़ता जा रहा है। अतः जल-संरक्षण आवश्यक हो गया है।

आधुनिक ऐतिहासिक स्रोतोंके अनुसार पर्यावरण-संरक्षणका कार्य सर्वप्रथम ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीमें सम्राट् अशोकने किया था। प्रकृतिकी महत्ताको स्वीकारते हुए वन्य जीव-जन्तुओंके शिकारपर प्रतिबन्ध लगाया, जो आज भी अशोकके शिलालेखोंमें अंकित है।

जलको आदिकालसे शुद्ध तथा पवित्र बनाये रखनेका प्रयास किया जाता है। पवित्र नदियोंके जलको बड़ी धूमधामसे गृहप्रवेश कराया जाता है। गंगा प्रसादीके रूपमें भोजका आयोजन होता है। पुरातनकालमें जल-संसाधनोंके रखरखावपर बड़ा ध्यान था। कुएँ, बावड़ी, झीलोंका निर्माण कराना धार्मिक कृत्य माना जाता था। जलस्रोतोंको गन्दा करनेपर दण्डका विधान था। प्राचीन कालमें ऋषि-आश्रमोंमें शिक्षाप्राप्तिके साथ-साथ विभिन्न प्रकारके पेड़ लगाने तथा उन्हें सिंचित करनेका पुनीत कर्म करना आवश्यक था। यदि कोई दम्पती निःसन्तान होता तो पेड़ लगाने या कुआँ या बावड़ी बनवानेसे उसे मुक्ति मिलनेकी मान्यता थी। धर्मपरायण व्यक्ति जलाशय बनाकर, वृक्षारोपणकर, देवालय बनवाकर धर्ममें संवर्धन करते थे।

हमारे पुरातन-साहित्यमें पर्यावरणकी महत्ताको विभिन्न प्रकरणों एवं तरीकोंसे समझानेका प्रयास हुआ है, पर्यावरण-सुरक्षा तथा संवर्धनके विभिन्न उपायोंका उल्लेख हुआ है। तत्कालीन साहित्यमें पर्यावरण-

सन्तुलन बनाये रखनेके अनेक सुझाव प्रस्तुत हुए हैं। ज्ञान और नीतिपरक पंचतन्त्रकी कहानियों तथा जातक कथाओंमें वन्य जीवनसे सम्बन्धित अनेकानेक प्रसंगोंको उद्घाटित किया गया है। सभी ग्रहों-नक्षत्रोंके साथ पंचतत्त्वों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश तथा प्रकृति, पर्वत, नदी, वनको देवता मानकर उनकी पूजा-अर्चनाका प्रावधान है।

यजुर्वेदमें भूमि-प्रदूषणपर नियन्त्रणहेतु उल्लेख है कि—**'पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मा अहं त्वाम्'** (यजु० १०।२३)

अर्थात् हे धरतीमाता! तुम हमारा पालन-पोषण उत्तम रीतिसे करती हो। हम कभी भी तुम्हारी हिंसा (दुरुपयोग) न करें। रासायनिक खादों तथा कीटनाशकोंके अति प्रयोगसे तुम्हारा कुपोषण न करें, बल्कि फसल हेर-फेरकर बोयें तथा गोबर, जल आदिसे तुम्हें पोषित करें। क्षरणकी रोकहेतु वृक्ष लगायें; क्योंकि तुम्हारे पोषणपर ही हमारा पोषण निर्भर है। भूमिकी उपजाऊ-क्षमता न्यून तथा क्षीण हो गयी है तो इस भूमिपर कुछ समय खेती-बाड़ी नहीं करें, जिससे प्रकृति, वायु, सूर्य-रश्मि एक वर्षमें उन्हें उर्वरा बना देंगे, ऐसे निर्देश वेदोंमें प्रकट हुए हैं।

पर्यावरण-संरक्षण आजकी महती आवश्यकता है, इस सम्बन्धमें निम्नलिखित सुझावोंकी क्रियान्वितिसे पर्यावरण-संरक्षणकी व्यवस्थाको बल मिल सकता है—

(१) सूखी पहाड़ियोंपर वृक्षारोपणद्वारा उपवन बनाना।

(२) मन्दिरों और उद्यानोंमें वृक्ष-वाटिकाओंका निर्माण करना।

(३) नदीकिनारे खेतोंकी मेड़ों आदिपर भूमि-कटावको रोकनेहेतु छायादार वृक्ष लगाना।

(४) मन्दिर तथा धार्मिक स्थलोंपर त्रिवेणी (पीपल, बरगद, नीम); पंचवटी (नीम, पीपल, बरगद, जामुन, आँवला); हरिशंकरी (बरगद, पीपल, पाकड़)-का वृक्षारोपण करना।

(५) प्रत्येक गाँवमें देवालय, गोचर भूमि तथा बंजरभूमिमें वृक्षारोपण कराना।

(६) शिक्षण संस्थानोंमें विद्यार्थियोंसे वृक्षारोपण कराना।

(७) श्मशान घाटोंपर धार्मिक महत्त्वके छायादार वृक्ष लगाना।

(८) राजमार्गोंके किनारे छायादार वृक्ष लगाना।

इस प्रकारकी कार्य-योजनासे जीवन-दान मिलेगा। हमारी पारम्परिक पर्यावरणीय व्यवस्थाको जीवन-दान मिलेगा।

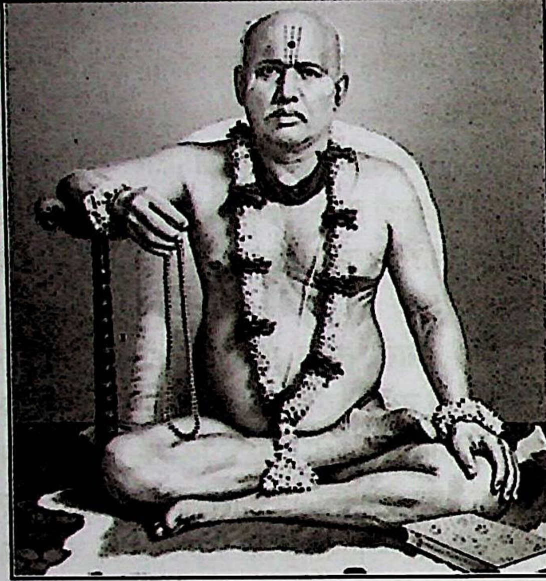
आज हमारी पुरातन परम्पराएँ और रीति-रिवाज समाप्तप्राय हो गये हैं। वर्तमान सभ्यता और भौतिकताकी विषबेल इतनी फलित हो गयी है कि समग्र संस्कृतिको पाला मार गया है। तुलनात्मक दृष्टिसे यह देखा जाय तो आजके इस भौतिक युगमें मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थमें अन्धा हो गया है और हमारी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओंकी मान-मर्यादाओं और भावनाओंको जीवनसे तिरोहित करता जा रहा है। पूर्वकी हमारी प्रकृति-उपासनाकी आस्थाएँ समाप्त हो गयी हैं। जिस श्रद्धा और आस्थाके साथ हम प्रकृतिकी पूजा करते थे, आज वह भावना समाप्त हो गयी है। प्रकृतिके दोहनसे अधिकाधिक अर्थलाभकी भावनामें वृद्धि हो गयी है। वृक्षपूजा केवल प्रतीकात्मक रह गयी है। आज बरगद, पीपल, नीम, आँवला आदिका महत्त्व कम होता जा रहा है। गोचर भूमिपर अत्यधिक अतिक्रमण हो रहे हैं। वहाँ आवासीय भवन खड़े किये जा रहे हैं। पशु-पक्षियोंकी जातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। हमारे जलस्रोत अब बस्तीके कचरादान बनते जा रहे हैं। जिन नदियोंको हम मातृवत् पूजते रहे हैं, अब उनमें कल-कारखानोंका प्रदूषित जल प्रवाहित हो रहा है।

आज भी हमारी पुरातन पर्यावरण-संरक्षणकी प्रथाओंको सामाजिक स्तरपर प्रधानता देते हुए इन परम्पराओंका अनुगमन दृढ़ इच्छाशक्तिके साथ किया जाय तो पर्यावरण-सन्तुलन तथा संरक्षणको प्रगाढ़ता मिलेगी।

संत-चरित—

श्रीब्रह्मचैतन्य गोंदवलेकरजी महाराज

(श्री के०वी० बेलसरेजी)



शालिवाहन शक १७६६ माघ सुदी द्वादशी तदनुसार (१९ फरवरी सन् १८४५ ई०) बुधवारको प्रातः ९.३० के आसपास श्रीब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदवलेकरका जन्म हुआ और शक १९३५ मार्गशीर्ष (अगहन) बदी दशमीको (सन् १९१३, २२ दिसम्बर) सोमवारको तड़के सूर्योदयके समय गोंदवलेमें अपनी आयुके ७०वें वर्षमें उन्होंने देहत्याग किया। गोरा रंग, चौड़ा मुखमण्डल, भव्य माथा, सीधी नाक, स्वच्छ शुभ्र दाँत और चमकनेवाली आँखें—ऐसी उनकी शरीर-रचना थी। उनके मुखमण्डलपर एक विशिष्ट आभा थी। उनके चेहरेकी मुसकानसे प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होता था। श्रीमहाराज प्रायः लँगोटी ही पहनते थे, किंतु कमरमें कभी-कभी गमछा, धोती, पीताम्बर या उपरना (उत्तरीय) लपेट लेते थे और कभी सिरपर रुमाल भी बाँधते थे। माथेपर केशरयुक्त चन्दन लगाकर बीचमें काली लकीर खींचते और मुद्रा भी लगाते थे। उनके पैरमें हमेशा खड़ाऊँ होते और हाथमें रूमाल होता था। श्रीराम-मन्दिरमें रामकी मूर्तिके सामने रखे हुए तकियेसे सटकर बैठते। दादा-दादी उन्हें 'गणपति' और माता-पिता उन्हें 'गणऊ' कहकर पुकारते थे। गाँवके लोग उन्हें 'गणूबुबा' कहते थे। उत्तर भारतके लोग उन्हें 'दक्खनके महाराज' कहते थे। श्रीमहाराजके गुरु श्रीतुकामाई उन्हें 'मेरा बालक' कहते थे। सभी शिष्य लोग उन्हें 'महाराज' कहते थे, तो वे स्वयं **'ब्रह्मचैतन्यबुवा रामदासी'** लिखकर हस्ताक्षर करते।

श्रीमहाराजको यात्रा करना बेहद पसन्द था। उन्होंने अपनी आयुके बारहवें सालसे पैंतालीसवें सालतककी अवधिमें अनेक यात्राएँ कीं। इन यात्राओंमें उन्हें तत्कालीन सामाजिक जीवनका बहुत अच्छे ढंगसे अवलोकन करनेका अवसर मिला। श्रीमहाराज तैरनेमें बहुत निपुण थे। जो तैरना नहीं जानता था, ऐसे आदमीको साथमें लेकर गंगाके इस किनारेसे, उस किनारेतक सहज ले जाते। पानीमें पीठके बल लेटकर तैरनेका उन्हें बहुत शौक था। घोड़ेपर बैठनेकी कला उन्हें अवगत थी। किसी भी प्रकारके उद्दण्ड घोड़ेको वे सीधा करते। जानवर भी उनका स्पर्श पाकर उनसे प्रेम करने लगता था।

श्रीमहाराज दौड़नेमें और पेड़पर चढ़नेमें बहुत कुशल थे। सूर्य-नमस्कार और दंड-बैठक बड़े अच्छे ढंगसे करते थे। खो-खो, आट्या-पाट्या (महाराष्ट्रका एक खेल) आदि खेल बड़े शौकसे खेलते। आयु बढ़नेके कारण पेट थोड़ा फूल गया था, लेकिन चुस्ती कम नहीं हुई थी। ६२ वें वर्षकी आयुमें काशीमें पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर गंगाकी सौ-सवा सौ सीढ़ियाँ आसानीसे शीघ्रतापूर्वक चढ़ते-उतरते थे। स्वच्छ और सुन्दर अक्षर उन्हें बहुत प्रिय था। उनका अपना अक्षर स्वच्छ और आकारबद्ध था। ऊँची आवाजमें स्पष्ट ढंगसे अर्थ समझा देनेकी उनमें कला थी। बालकोंसे उन्हें बहुत प्यार था। वे उनके साथ खेलते थे और उनकी रुचिके अनुसार व्यवहार करते थे। वे बार-बार कहते कि छात्रोंको अपनी पढ़ाईमें कभी कमजोर नहीं रहना चाहिये। जिनकी इच्छा होती कि महाराज उनके घर आयें, वे अपने छोटे बालक या बालिकाको महाराजको ले आनेके लिये भेजते और

श्रीमहाराज किसी प्रकारकी आनाकानी न करते हुए उनके घर जाते, ऐसा दृश्य गोंदवलेमें हमेशा दिखायी पड़ता था।

काव्य-पाठ और मधुर गायनमें उनकी बहुत रुचि थी। वे स्वयं कविताओंकी रचना करते थे और दूसरोंद्वारा रचित कविताओंको भी बहुत दिलचस्पीसे पढ़ते थे। वे बैठे-बैठे अनायास हनुमान्‌जीका चित्र बनाते। उन्हें स्वभावतः भजनों, देवताओंकी कहानियों, नामस्मरण और एकान्तमें रुचि थी। विद्वानोंकी अपेक्षा उन्हें अनाड़ी लोग बहुत पसन्द आते थे। रईसोंकी अपेक्षा गरीब और शहरमें रहनेवालोंकी अपेक्षा देहातमें रहनेवाले अधिक प्रिय थे। उन्हें देहातमें रहना बहुत पसन्द था। पति-पत्नीमें, माँ-बाप और सन्तानमें, भाई-बहनमें यदि निष्कपट प्रेम हो तो उन्हें विशेष प्रसन्नता होती थी। सास और बहू प्रेमसे रहती तो उन दोनोंकी वे बहुत प्रशंसा करते। वे ऐसा कहते थे कि गृहस्थीमें निष्कपट प्रेम करनेका प्रारम्भ यह भगवान्‌पर प्रेम करना सीखनेकी पहली सीढ़ी है।

श्रीमहाराजका सारा प्रभाव उनकी सतेज आँखों और विलक्षण वाणीसे प्रकट होता था। उनके देखनेकी और बोलनेकी विशेष मोहिनीके कारण उनसे विरोध करनेवाले उनकी दृष्टिकी परिधिमें आते ही और उनका भाषण सुनते ही उनके वशमें आ जाते थे। वारकरियों (नियमित रूपसे पण्ढरपुरकी यात्राके लिये जानेवाले विट्ठल भक्त), रामदासियों, व्यापारियों, नौकरों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, किसानों, अंग्रेजी पढ़े-लिखे युवक-युवतियों, कलाकारों, शास्त्री-पण्डितों, सुधारकों, सनातनियोंसे महाराज उनकी भाषामें बोलते और उस व्यवसायसे सम्बन्धित कोई उपमा देकर उन्हें नामकी महिमा समझा देते थे, जिससे प्रत्येक व्यक्ति उनका कहना मानकर, समझकर प्रसन्न होता था।

मनुष्यको प्रेमसे समझाकर सीधा करनेकी कला जैसे उनमें थी, वैसे ही किसी उद्दण्ड व्यक्तिको धमकाकर सही रास्तेपर लानेकी कला भी उनमें भरपूर थी। उनकी भाषा घरेलू, सहज, आसान, मधुर थी। उनके वाक्य बहुत छोटे, पर जोशीले होते थे। उनमें कृत्रिमता नहीं थी। उनके छोटे-छोटे वाक्य हृदयको स्पर्श करते और भाव जाग्रत् करते थे। जीवनमें अनगिनत प्रकारके व्यक्तियोंका उन्हें अनुभव था। अतः सामान्य मनुष्योंके सुख-दुःख, उनकी सच्ची वासनाएँ-भावनाएँ, उनकी कठिनाइयाँ आदिकी उन्हें स्पष्ट कल्पना थी। इसके कारण श्रीमहाराज गृहस्थ लोगोंकी अवस्थाका वर्णन जब करते तब वह इतना वास्तविक होता था कि उनकी वाणी अन्तःकरणको हिला देती और सुननेवालोंके मनमें उनके प्रति प्रेम पैदा होता था। उनकी प्रतिभा रात-दिन जाग्रत् रहती थी। फलतः उनकी भाषा औरोंकी अपेक्षा कुछ अलग अर्थात् भावस्पर्शी लगती थी। लोगोंका मन भक्तिमार्गकी ओर आकर्षित करनेके लिये श्रीमहाराजने अपनी सारी वाणीकी बाजी लगा दी थी।

श्रीमहाराजके व्यवहारमें विलक्षण खूबी होती थी। शिष्योत्तम ब्रह्मानन्दसे लेकर सीधे व्यसनीतक उनका व्यवहार समान होता था। प्रत्येक मनुष्यको लगता था कि 'मुझपर महाराजका बहुत प्रेम है।' प्रत्येक मनुष्यका अन्तर जानकर वे उससे बोलते, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको संकेत समझकर अपूर्व समाधान मिलता था। श्रीमहाराजने कभी किसीका अपमान नहीं किया। किसी भी प्रकारका मनुष्य उनके पास आये, उसे सुधारनेका मार्ग उनके पास था। उनके बरतने, बोलनेमें बहुत संयम, आकर्षकता और मधुरता होती थी। बच्चोंका, विशेषरूपसे बुद्धिमान् युवकोंका मन आकर्षितकर उनके मनमें आत्मीयता निर्माण करनेकी विलक्षण सामर्थ्य उनमें थी। वे प्रायः स्वयं लिखते नहीं थे, किसीको लिख लेनेके लिये कहते थे। उन्हें हिन्दी, कन्नड़, तेलुगू, संस्कृत आदि भाषाओंकी बहुत अच्छी तरहसे समझ थी।

छोटी-छोटी बातोंसे श्रीमहाराज मनुष्यकी कसौटी कर लेते और वह ज्ञानकी (आध्यात्मिक) गहराईमें

कहाँतक पहुँचा है, उसकी समझ उसे करा देते। गोंदवलेमें जो मनुष्य उनके पास आता, उससे श्रीमहाराज अपने बेटेकी तरह प्यार करते थे। गृहस्थ व्यक्ति या प्रापंचिक व्यक्तिसे व्यवहार करते समय श्रीमहाराज कभी किसीके दबैल नहीं रहे, कभी किसीके सामने हाथं पसारा नहीं, कभी किसीसे चन्दा इकट्ठा नहीं किया। उन्होंने अपनी जीवनी एकदम अलग रखी। पैसोंके लिये दबैल न होनेके कारण श्रीमहाराजको अपने मतोंको लोकाग्रहके लिये छोड़ना नहीं पड़ा। लौकिक प्रसिद्धि, समाचार-पत्रोंकी चर्चा और मंचके व्याख्यानोंसे उन्हें एकदम नफरत थी। उन्होंने बहुत सावधानीसे प्रसिद्धिको टाला। पूर्वकालमें श्रीमहाराज अपना नामतक व्यवस्थित नहीं कहते थे। किसीसे कहते 'मैं जंगम हूँ', किसीसे कहते 'मैं नंगा बैरागी हूँ', किसीसे कहते 'मैं कनफटा योगी हूँ', किसीसे कहते 'मैं पंढरपुरका वारकरी हूँ' तो किसीसे कहते 'मैं रामदासी हूँ'। श्रीमहाराज कहते थे कि सच्चा महत्त्व भगवान्‌के नामका है, यह कहनेवाला कोई भी क्यों न हो, सच्चा है। यह कार्य इतना विशाल और व्यापक है और उसकी तुलनामें अपना जीवन कालखण्ड इतना अल्प है और इस संसारमें हम इतने सामान्य हैं कि उसमें अपनी प्रसिद्धि करना या उसे कराना निरी मूर्खता है।

जिस मनुष्यको उन्होंने अपना माना, उसका सब उन्होंने सहा। अतः उनका आदमी उन्हें प्रायः छोड़कर अन्यत्र नहीं गया। वे हमेशा कहते थे कि पहलेके लोगोंने जो-जो अच्छा और उपयुक्त करके रखा है, वह हम व्यर्थ क्यों गँवायें? अच्छा और पुराना—जो है, उसे हमेशा टिकाकर उसमें अच्छे और नवीनकी वृद्धि करें। वे ऐसा भी कहते थे कि 'जीवनको विकसितकर, व्यापक बनाकर प्रत्येक मनुष्यको जीवनमें मौज-मजा लूटकर जीवित रहना चाहिये, लेकिन उसमें अन्तिम क्षणतक भगवान्‌के नामका ध्यान रखना चाहिये। उनके मनमें स्त्रियोंके प्रति अत्यादरकी भावना थी। वे उन्हें पूज्य मानते थे। वे हमेशा कहते थे कि महिलाओंने ही अबतक धर्म दृढ़ किया है, उन्होंने ही समाजकी नीतिको कायम रखा है, वे ही परिवारमें अधिक कष्ट सहती हैं। वे ही पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक नीतिमान् होती हैं। जिस वंशमें स्त्रियाँ समझदार, ज्ञानी होती हैं, वे वंश दीर्घकालतक अच्छे चलते हैं। माता और उनके सम्बन्धमें जब कुछ चर्चा होती तो वे गद्‌गद हो जाते, उनका गला भर आता था और आँखोंमें आँसू भर आते। वे कहते, 'महिलाओंका अन्तःकरण जन्मतः शुद्ध और श्रद्धायुक्त होनेके कारण भगवान्‌के पास पहुँचनेके लिये उनका मार्ग सहज और आसान है।'

उनके घर जो भी मनुष्य आता, उसे वे भोजन अवश्य खिलाते थे। सच तो यह है कि वे जितनी लगनसे और प्रसन्नतासे भगवान्‌के नामका प्रचार-प्रसार करते थे, उतनी ही प्रसन्नता और लगनसे वे अन्नदान करते थे। उनका कहना था कि 'अन्नके कारण बुद्धि बनती है, अतः प्रेमसे बनाया हुआ और परोसा हुआ रामका प्रसाद (सब्जी, रोटी और दाल) मन्दिरमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको ग्रहण करना चाहिये। मन्दिरमें सबके लिये बना हुआ खाना एक समान होता है। पंक्तिमें भोजनमें भेद करनेसे उन्हें चिढ़ थी। कई बार श्रीमहाराज सबको भोजनके लिये बिठाकर स्वयं परोसते थे। उनका भोजन होनेके बाद वे भोजन करते थे। पंढरपुर जानेवाले कई वारकरी और उनकी दिंडियाँ मन्दिरमें मुकामके लिये आती थीं। श्रीमहाराज उनसे बहुत प्यारसे परामर्श करते थे। पंक्तिमें बैठकर भोजन प्रारम्भ होनेतक **'जय जय श्रीराम, जय जय श्रीराम'** ऐसा जोरसे लेकिन मधुर स्वरमें कहनेका रिवाज महाराजने प्रारम्भ किया। कोई भी काम करते समय, भोजन बनाते समय, पानी भरनेके वक्त, पत्तल तैयार करते वक्त, अनाज बीनते समय, जमीन लीपते-पोतते समय, झाड़ू लगाते समय, खेतमें भूमि जोतते वक्त, कुआँ खोदते समय सभी

लोग भगवान्‌का नाम लेने लगे।

भगवान्‌के अस्तित्वका सच्चा भान होकर उसके अनुसन्धानमें जीवनका प्रत्येक क्षण कैसे व्यतीत करें, यह सामान्य स्त्री-पुरुषोंको समझना बहुत कठिन है, इसलिये श्रीमहाराजने प्रभु रामको गोंदवलेमें लाकर स्थापित किया। केवल स्थापित ही नहीं किया बल्कि उन्होंने भगवान्‌पर इतना प्रेम किया कि वे जब नैमिषारण्यमें प्रस्थान करनेके लिये निकले, तब श्रीरामकी आँखोंमें आँसू भर आये। जो-जो मनुष्य उनके पास आता, उससे बड़े प्रेमसे वे कहते, 'अरे भाई, मेरे रामको आँखें भरके देखो और फिर घर जाओ' मन्दिरमें जो श्रीराम हैं, वह केवल मूर्ति नहीं, प्रत्युत साक्षात् परमात्मा हैं, इस भावनासे श्रीमहाराज स्वयं बरतते थे और उनकी ओर आनेवाले प्रत्येक स्त्री-पुरुषको उसी पद्धतिसे बरतनेका उपदेश करते थे। उनको यह प्रत्यक्ष दिखायी देता कि संसारमें जो भी बातें घट रही हैं, उसमें रामकी इच्छा ही काम कर रही है और व्यवहारकी दृष्टिसे योग्य प्रयत्न करनेपर जो भी भला-बुरा फल मिले, वह रामकी इच्छासे ही मिला है, ऐसी श्रद्धा भक्त रखे—ऐसा वे कहते थे। ऐसी श्रद्धा जिसकी होती है, उसे सुख-दुःखकी बाधा नहीं होती। यह श्रीमहाराजने सबको प्रत्यक्ष दिखाया है। सब कुछ राम करता है, सच्चे कर्ता राम ही हैं, यह श्रीमहाराजके उपदेशका मर्म था, अतः उनकी प्रत्येक हलचल या कृतिमें वे रामको साक्षी करते और स्वयं अलग हो जाते। संसारमें सारा कर्तृत्व भगवान्‌का है और अपना अहंकार 'मैं' का भाव नष्ट करनेकी युक्ति सब सीखें, इसलिये आजीवन उन्होंने रामको ही लोगोंके सामने प्रस्तुत किया। जब कोई नया मनुष्य आता तब श्रीमहाराज उससे कहते, 'पहले रामको नमस्कार करो, फिर सबको नमस्कार करो।' अपने जीवनकी प्रत्येक क्रिया श्रीरामके लिये हो, अपना जीना भी उसकी सेवाके लिये हो, ऐसा उनका बहुत आग्रह था।

प्रत्येक व्यक्तिमें भगवान्‌के पास पहुँचनेके लिये कोई-न-कोई एक गुण निश्चित ही होता है, उस गुणका विकास और उपयोग करके भगवान्‌के पास कैसे पहुँचे—यह वे सबको सिखानेका काम करते थे।

'केवल गृहस्थी अच्छी करना—यह कोई मनुष्य-जन्मका ध्येय नहीं है। जानवर भी अपनी-अपनी गृहस्थी करते हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भगवान्‌की उपासना करके उसकी प्राप्ति कर ले, तभी गृहस्थीके परिश्रमकी सफलता होगी। सद्यःस्थितिमें उपासना करनेमें नाम-जैसा दूसरा कोई आसान उपाय नहीं है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति नामका ही पल्ला पकड़े'—यही उनके जीवनका सूत्र था। यह तत्त्व उन्होंने स्वयं आचरणमें उतारा और तभी लोगोंसे कहा।

सन् १९१३ में गोंदवलेमें जो रामनवमीका उत्सव हुआ, वही उनके जीवनमें अन्तिम और बड़ा उत्सव हुआ। नौ दिन रात-दिन अखण्ड नाम-स्मरण चल रहा था। इसके अलावा प्रतिदिन कीर्तन, पुराण, प्रवचन, अध्यात्म, संवाद आदि शुरू थे। लगभग पाँच हजार लोग गोंदवलेमें उपस्थित थे। नमस्कार करनेके लिये जो भी मनुष्य आते, उनकी पीठपर हाथ फेरकर श्रीमहाराज कहते, 'बालक, भगवान्‌ने जिस परिस्थितिमें हमें रखा है, उसी परिस्थितिमें समाधान मानो और उनके नामको कभी मत भूलो। जो नाम लेगा, उसके पीछे राम आधारके रूपमें खड़ा है। नाम लेनेवालेका राम कल्याण करता है। यह मेरा कहना अन्ततक मत भूलो।'

भगवान्‌के नामकी श्रेष्ठता और गौरव करते-करते, कहते-कहते उनकी आयुका प्रत्येक क्षण व्यतीत हुआ। नामकी महिमा और गरिमाके लिये उन्होंने जन्म लिया था। आजन्म उन्होंने नामका गायन किया और अपनी आयुके अन्तिम क्षण भी नामकी महिमा-कथन करनेमें व्यतीत किये। श्रीमहाराजने आजन्म काया-वाचा-मनसा संसारमें नामके सिवाय दूसरा कोई सत्य माना ही नहीं।

गोभक्ति-कथा—

मौनू बहुरानी

(पं० श्रीरामस्वरूपदास पाण्डेय)

पं० श्रीधर शास्त्रीजीके जीवनका प्रारम्भिक अधिक समय काशीमें संस्कृत अध्ययन करनेमें ही व्यतीत हुआ। उन्होंने नव्यव्याकरणसे शास्त्री और न्यायसे आचार्य किया। अध्ययन समाप्तकर वे अपने गाँव लौटकर आये तो उन्होंने अनुभव किया कि हमारी पढ़ाईका यहाँ कोई उपयोग नहीं। उन्होंने संस्कृत पाठशाला खोलनेका विचार किया। कुछ विद्यार्थी इकट्ठे किये, पर विद्यार्थी व्याकरणमें परिश्रम नहीं करना चाहते थे। वे तो अपने पौरोहित्य कर्मकी सिद्धिके लिये कुछ कर्मकाण्ड तथा ज्योतिष सीखनेके पक्षमें थे। इस प्रयोजनकी सिद्धि न होनेके कारण छात्रोंकी संख्या घटती ही चली गयी। आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्नता न होनेके कारण उन्होंने पुराणवाचनका आश्रय लिया। अधिक आयु हो जानेके कारण उनका जैसे-तैसे विवाह हुआ। विवाहके छः-सात वर्ष व्यतीत हो गये, पर कोई सन्तान नहीं हुई। पत्नीने धैर्य छोड़ दिया, पर पण्डितजी लगातार सन्तान-गोपाल-मन्त्रका जप और शिवार्चन करते रहे। भगवान्की कृपासे उनके एक कन्याका जन्म हुआ। इस प्रकार पण्डितजीके जीवनमें सन्तानके अभावका दुःख समाप्त हो गया। चिरकालतक प्रतीक्षाके बाद कन्याका जन्म हुआ था, अतः उसे पुत्रसे भी अधिक लाड़-दुलार मिला। कन्याका नाम तो अभिलाषा था, पर बड़ी आयुतक वह बोली नहीं, इसलिये उसका लाड़-दुलारका नाम मौनू पड़ गया। मौनू पढ़नेमें बहुत तेज थी। शास्त्रीजीने प्रारम्भिक शिक्षाके उपरान्त उसे व्याकरण और न्याय पढ़ाना प्रारम्भ किया। उसकी योग्यता और अभिरुचिको देखकर शास्त्रीजी पढ़ानेमें उत्साहित हुए। विद्यालयकी पढ़ाईके साथ-साथ उसकी संस्कृतकी शिक्षा समानान्तर रूपसे चलती रही। दोनों ओरसे उत्साहका परिणाम यह हुआ कि कन्याने संस्कृत विषयमें एम०ए० कर लिया। वह स्नातक कक्षातक तो अपने मामाके यहाँ कॉलेजकी सुविधाके कारण पढ़ती रही, इसके पश्चात् एम०ए०, एम०एड० की परीक्षा स्वाध्यायी रूपसे दी। संस्कृतका ठोस ज्ञान होनेके कारण एम०ए० में उसके अंक साठ प्रतिशतसे भी अधिक आये।

शास्त्रीजीके सामने अपनी सुन्दर सुयोग्य कन्याके अनुरूप वरकी प्राप्तिमें अपना आर्थिक संकट और देहाती होना आड़े आया। पत्नीकी अभिरुचि थी कि कन्याका विवाह शहरमें किसी अच्छे नौकरी करनेवाले लड़केसे किया जाय, पर अन्ततः शास्त्रीजी अपनी पत्नीकी इस अभिलाषाको पूर्ण नहीं कर सके। वह स्वाभिमानपूर्वक कन्याकी योग्यता तथा गुणोंका बखान करते, परंतु लोगोंके लिये उनका कुछ महत्त्व नहीं होता। शास्त्रीजीके घर थोड़ी-सी जमीन थी, जिसमें वे खेती कराते तथा चार-पाँच गायें थीं, जिनकी सेवा स्वयं करते। अपनी मौनू बेटीको दुहिता कहते उन्हें प्रसन्नता होती; क्योंकि गायका दूध वही दुहती थी। गोशालाकी सफाई और गायोंकी सानी आदि बनानेका काम मौनू करती। मैं एक बार किसी शास्त्रीय निर्णयके कार्यसे शास्त्रीजीके घर गया तो मैंने मौनूकी योग्यता देखी और मैं चकित रह गया। किसके मनमें क्या अभिलाषा है, किसको क्या चाहिये? उसके बिना कहे ही मौनू समझ जाती और उस चीजको तत्परतासे प्रस्तुत कर देती। मैं अपने साथ कागज और कलम लेकर नहीं चला था, कुछ लिखना आवश्यक था। मेरे मनमें आनेके पूर्व ही मौनूने उपस्थित कर दिया। मुझसे पूछा काला या लाल? मैं उत्तर दे नहीं पाया, फिर उसने मेरी अभिरुचिका काला पेन मुझे दे दिया। शास्त्रीजी कुछ भी कहते तो वह उत्तरमें 'जी' कहकर तुरन्त काम कर देती। मैंने शास्त्रीजीसे पूछा आपकी कन्या बड़ी कार्यकुशला है। आपके कुछ कहनेपर 'जी' कहती है। क्या यह बोल नहीं पाती, इसलिये इसका नाम मौनू है?

शास्त्रीजीने कहा, 'नहीं, मेरी कन्या बचपनमें जरूर बहुत वर्षों बाद बोली, परंतु आज तो इसका बहुत शुद्ध उच्चारण है।' उन्होंने कन्याको बुलाकर अनेक स्तुतिपरक श्लोक सुनवाये। मेरे मनमें आया किं ऐसी

कन्या तो मेरे घरमें आती तो मैं धन्य हो जाता, लेकिन पता नहीं मेरा प्रस्ताव शास्त्रीजीको मान्य होगा या नहीं, अतः चुप रह गया। अपना काम पूरा करनेके बाद मैं शास्त्रीजीसे आत्मीयतासे बातें करने लगा, शास्त्रीजीने भी अपनी समस्याओंसे अवगत कराया कि अब मेरे जीवनमें एक ही समस्या है, मौनूके विवाहकी। मैं अपनी पत्नीसे परेशान हूँ। उसकी इच्छा तो शहरमें नौकरी करनेवाले लड़केसे विवाहकी है, पर मेरे पास इतना धन कहाँ है, जो उसकी अभिलाषा पूर्ण कर सकूँ।

मौका मिल गया, मैंने कहा आपकी इच्छाके अनुरूप देहातमें तो योग्य बालक मिल जायगा, पर अभीतक नौकरी नहीं मिली है। शिक्षा पूरी करनेके पश्चात् नौकरीके लिये प्रयत्नशील अवश्य है। शास्त्रीजीने कहा, मैं तो ऐसे ही बालकसे देहातमें विवाह करनेको तैयार हूँ; क्योंकि मेरे पास देनेको अधिक पैसे नहीं हैं। मैं स्वयं अपनी अभिरुचिसे यथाशक्ति धन देनेको तैयार हूँ। इसके बाद मैं चुप रह गया। थोड़ी देरमें शास्त्रीजीने कहा, 'तो फिर आपने कुछ बताया नहीं।' मैं पुनः चुप रह गया, तब शास्त्रीजीने पूछा आप संकोच क्यों कर रहे हैं? बताइये न। तब मैंने कहा—हाँ, वास्तवमें मैं संकोच कर रहा हूँ, पर आपके आग्रहसे बताऊँगा, कुछ छिपाऊँगा नहीं। आप मुझसे तो अच्छी तरह परिचित हैं कि मैं देहाती हूँ। मेरे घर आयका साधन मुख्यरूपसे कृषि है और कृषिका ही अंग गोपालन है। मेरे चार बेटे हैं। मैंने उन्हें पूर्ण शिक्षित कराया। फलस्वरूप एक इन्जीनियर है, एक डॉक्टर है और एक कानूनगो-पदपर माल विभागमें है।

मेरे चौथे लड़के सुधीरने हिन्दीमें एम०ए०, एम०एड० किया है। आजकल वह एक प्राइवेट हाईस्कूलमें प्राचार्य है, यदि उसका चयन हो गया तो व्याख्याता-पदपर नौकरी हो सकती है। मैंने तीन लड़कोंके विवाहमें खूब जी भरकर दहेज और धन लिया है, पर मेरी पत्नी और मैंने आजतक बहूकी सेवाके सुखका आस्वादन नहीं किया। विवाहके बाद मेरे दोनों लड़के अपनी बहुओंको लेकर चले गये। तीसरी बहू भी साथमें जानेको उद्यत है। शहरकी इन बहुओंको न तो भोजन बनाना आता है, न घरका काम और न गोसेवा। हाँ, चाय बनाना जरूर आता है, जिसे न मैं पीता हूँ और न मेरी पत्नी। गायके गोबरसे उन्हें घृणा है। कभी यदि गायोंको घास डालनेको कहते हैं तो पीछे पूँछकी ओर डालकर चली आती हैं। यदि कभी घरमें आकर रहती भी हैं तो मेहमानोंकी तरह हुक्म देती हैं और पत्र-पत्रिकाओंको पढ़ती या रेडियो, टी०वी० देखती हैं। अतः मैं आपकी मौनूको अपनी बहूके रूपमें देखनेकी अभिलाषा करता हूँ। अत्यन्त आत्मीयताके कारण मैंने अपने हृदयके भावोंको आपसे प्रकट कर दिया है।

मैं अभी आता हूँ, ऐसा कहकर शास्त्रीजी उठकर भीतर चले गये। उन्होंने अपनी पत्नीसे इस सम्बन्धमें बात की। पासमें बैठी मौनू भी सुन रही थी। मौनू अनेक शहरवालोंको 'लड़की दिखाओ'के प्रस्तावके अनुरूप साक्षात्कार दे चुकी थी। उसे अपने अकारण अपमानसे खीझ उठ रही थी। अतः उसने गौण संकेतमें अपनी स्वीकृति प्रकट कर दी। अतः उसकी माँ चुप रह गयी। शास्त्रीजी थोड़ी देरमें वापस आ गये। उनके साथ मौनू भी दूधका गिलास और कुछ नाश्ता लेकर आयी। मैंने शास्त्रीजीकी स्वीकृतिके संकेतपर सम्बन्धकी स्वीकृति दे दी। कन्याके हाथपर एक हजार रुपये रख दिये।

भगवान्‌की कृपासे शास्त्रीजीकी बेटीका विवाह सुधीरके साथ हो गया। पूरे विवाहमें आनन्द और उत्साह छाया रहा। शास्त्रीजीका दैन्य और बारातियोंका स्वागत, खान-पान ऐसा था कि प्रत्येक बाराती हृदयसे प्रशंसा कर रहा था। हमारे घर पहुँचकर मौनूके सुसंस्कारों और सद्‌गुणोंका विस्तार होने लगा। मेरे घरके ठाकुरजी मुसकराने लगे। उनकी प्रातः आरती और सायं-सन्ध्या होने लगी। मध्याह्नमें राजभोग लगने लगा। मौनूको खुद सानी बनाते देखकर काम करनेवाले नौकर सावधान हो गये कि अब हमारी पोल-पट्टी नहीं चलेगी।

अबतक तो देखनेवाला कोई नहीं था। सब मनमाने ढंगसे काम करते थे। पर अब झाड़ू लगानेवाली, बर्तन माँजनेवाली तथा गोसेवा करनेवाले सभी सावधान हो गये और तत्परतासे काम करने लगे। घरमें नयी बहू

आनेसे नयी बहार आ गयी। मेरी पत्नी आँखोंमें आँसू भरके कहती कि आज मुझे बहूका सुख मिला है। वह हमारी दिनभर प्रेमपूर्वक सेवा करती है तथा रातमें तेलका मालिशकर पैर दबाकर सोने जाती है। नयी बहूने पिछवाड़ेके बाड़ेमें छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाकर सब्जियोंके बीज बो दिये, कुछ दिनोंमें पूरे घरको ताजी सब्जी मिलने लगी। विदाकी बेलामें शास्त्रीजीने अपनी मौनू बेटीको आशीर्वाद देते हुए कहा—**'साम्राज्ञी श्वशुरे भव'** अर्थात् अपनी ससुरालकी महारानी बनो। यही हमारी प्राचीन परम्परा थी।

एक बार घरमें सब बहुएँ इकट्ठी हुईं। वे सब अपने-अपने स्वाभिमानका संरक्षण करती हुई रहीं, हर समय अपने मायकेकी सम्पन्नताकी ही चर्चा करतीं। उनके शरीर कुछ काम न करनेसे बेडौल हो गये थे। कोई अपनेको शुगर और कोई अपनेको ब्लडप्रेशरका रोगी इस प्रकारसे बताती थीं, जैसे यह उनके सुखी जीवनकी उपलब्धि हो। उनके कमरेमें सर्दी, जुकाम, खाँसी और सिरदर्दकी दवाएँ तो सजी ही रखी रहतीं; क्योंकि किसीका कुछ-न-कुछ बना ही रहता था। बस एक मौनू ही ऐसी थी, जिसे कामकी व्यस्ततासे सिरदर्द, जुकाम, बुखारकी गुंजाइश ही नहीं थी। उसकी जेठानी उससे पूछती, तुम कितनी गहरी नींद सोती हो, मुझे तो नींदकी गोली खाकर भी नींद नहीं आती, उसका उत्तर मौनू हँसकर देती—हाँ दीदी, मुझे पता नहीं क्यों गहरी नींद आती है?

कभी चारों बहुओंकी बैठक होती और जब वे अपनी शिक्षा, ज्ञान-विज्ञानकी हेकड़ी भरने लगतीं तो मौनू भी पीछे नहीं रहती। जब समस्या अटक जाती तब समाधान मौनू ही देती और मौनूके इस कार्य-व्यवहारको देखकर सभी बहुओंको भीतरसे आत्मग्लानि होने लगी। मैं मौनू-जैसी स्वस्थ एवं सुखी क्यों नहीं हूँ? मैं अपना सम्मान करवाना चाहती हूँ, पर सब मौनूका सम्मान हृदयसे करते हैं। मौनूके अनुशासनको सभी काम करनेवाले हृदयसे स्वीकार करते, क्योंकि वह सदा उन लोगोंको अन्न-वस्त्रादिसे सन्तुष्ट रखती है। सुधीर थोड़ी दूर एक कस्बेके हाईस्कूलमें पढ़ाता था। मौनूके व्यवहारसे वह इतना सुखी एवं प्रसन्न हो गया कि अब विद्यालयसे तुरन्त घर चला आता और मौनूके साथ गोसेवामें हाथ बँटाता। अबतक मेरे घरमें घी बाजारसे खरीदा जाता था, पर पता नहीं अब क्यों दस-पाँच किलो घीका संग्रह घरमें रहता। पहलेसे भी अधिक दूध, छाछ, दही, घी, खाया जाता।

एक दिन मौनूको 'गृहलक्ष्मी' कहनेपर मेरी बहुएँ नाराज हो गयीं और अपने-अपने दहेजकी, विवाहके लेन-देनकी चर्चा करने लगीं। मेरी पत्नीने मुझे रातमें यह सुनाया। तब एक दिन मैंने खुले कण्ठसे कह दिया कि सच्चा दहेज तो मुझे शास्त्रीजीने दिया, जिसकी समानता कोई नहीं कर सकता। एक दिन मौनूने गोसेवाकी बात सबसे कही। उसने कहा—सच बताऊँ तो गोसेवासे ही मुझे ऐसा शान्त रहनेका स्वभाव प्राप्त हुआ। गोसेवा करके प्रतिदिन मैं बहुत ही आनन्दका अनुभव करती हूँ। जिस दिन मुझे गोसेवाका अवसर नहीं मिलता, उस दिन मन थोड़ा खिन्न तथा अशान्त रहता है। आप सबके शरीरोंमें जो कुछ बीमारियाँ और कष्ट महसूस हो रहे हैं, वे गोसेवा और गोमूत्र-सेवनसे समूल नष्ट हो सकते हैं। मैं रोज यह सोचती हूँ कि आपके कष्ट दूर करूँ, पर संकोचके कारण रुक जाती हूँ। सोचती हूँ, आप सब शहरकी हैं, क्या पता मेरी बातोंको गँवार समझकर ठुकरा न दें। इस कारण कुछ कह न सकी। आप भी दीदी! मेरे साथ गोसेवा किया करें, गव्योंका नियमित पान करें और भगवन्नामका जप करें तो एक माहमें आपको बहुत ही अच्छी अनुभूति होने लगेगी। दीदी, मैं तो सोचती हूँ कि इतना कष्ट झेलनेकी बजाय आप मेरी बात मानकर एक माह ऐसा करके देखें।

मौनू बहूरानीकी बात मानकर तीनों बहुओंने लगातार एक माहतक गोसेवा की तथा गव्योंके सेवनके साथ श्रीहरिका नाम-स्मरण करने लगीं। इसमें इनका कोई खर्चा नहीं हुआ। एक माहमें सबको सुखका अनुभव होने लगा तथा बहुत ही आत्मसन्तोष हुआ। सबका स्वास्थ्य अच्छा होने लगा। पूरा परिवार गोसवामें लगकर श्रीहरिका परम भक्त बन गया।

प्रेरणा-पथ—

निर्दोष जीवन जगत्के लिये उपयोगी होता है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जो मानव अपने प्रति न्याय करता है, वह निर्दोष जीवनको सुरक्षित रखनेमें सफल होता है, समर्थ होता है और जो दूसरेके साथ क्षमा एवं प्रेमका व्यवहार करता है, वह परस्परमें वैर-भावना तथा संघर्षको मिटाकर एकताका पाठ पढ़ानेमें समर्थ होता है। एकता निर्वैरतामें है, एकता क्षमा और प्रेममें है। निर्दोषता न्यायमें है, निर्दोषता कहीं बाहर नहीं है। राष्ट्रके द्वारा जब न्याय होता है, तब उसका परिणाम क्या होता है ? विचार कीजिये। कोई भी बुराई किसीके जीवनमें-से उस समयतक नहीं निकल पाती, जबतक कि बुराईजनित वेदनाकी मात्रा बुराईजनित सुख-लोलुपतासे अधिक न बढ़ जाय। बुराई तभी नाश होती है। परंतु दूसरेके द्वारा जब न्याय होता है, तब यदि अपराधसे अधिक दण्ड मिल गया तो क्रोधपूर्वक आदमी बुराई करने लगता है और अपराधसे कम दण्ड मिले तो वह लोभपूर्वक बुराई करने लगता है। कोई भी राष्ट्र—मैं किसी राष्ट्रविशेषकी बात नहीं कहता। कोई भी राष्ट्र ईमानदारीसे यह नहीं कह सकता कि हमने अपनी राष्ट्रीयताके द्वारा संसारमें न्यायकी स्थापना करके निर्दोषताको सुरक्षित रख सकनेमें सफलता पायी है।

हम लोगोंको बताया जाता है, पर मैं तो उस राजनीतिमें घुसकर निकला हूँ, मैं वास्तविकताको जानता हूँ। हम लोग सोचा करते थे कि जहाँ रोटीका प्रश्न रहता है, वहाँ बेईमानी रहती है, लेकिन आज मैं पढ़े-लिखोंसे सुनता हूँ कि रूसमें २५ आदमियोंके पीछे एक पुलिसमैन है, वहाँ तो रोटीका प्रश्न नहीं है। जहाँ रोटीका प्रश्न नहीं है, वहाँ इतनी पुलिसकी आवश्यकता क्यों हो गयी भाई ? जहाँ रोटीका प्रश्न नहीं, वहाँ फौजकी आवश्यकता क्यों हो गयी भाई ? जहाँ मानवमात्रके साथ सद्भावना है ही, वहाँ विनाशकारी आविष्कारोंकी आवश्यकता क्यों हो गयी भाई ? सोचो जरा, गम्भीरतासे विचार करो। यह सर्वथा भ्रमात्मक धारणा है कि राष्ट्र होकर हम सुन्दर समाजका निर्माण कर सकते हैं। गलत, बिलकुल गलत। हाँ, एक उपाय है। हमारे और आपके जीवनमें राष्ट्रीयता आ जाय, जीवनमें राष्ट्रीयताका सही उद्देश्य आ जाय, अर्थात् हम अपने साथ न्याय करना सीख जायँ। चाहे पिता-पुत्रकी बात हो, अपने साथ न्याय करें; पति-पत्नीके बीचकी बात हो, तो अपने साथ न्याय करें। भाई-भाईके बीचकी बात हो तो अपने साथ न्याय करें। दो वर्गोंके बीचकी बात हो तो अपने साथ न्याय करें। दो देशोंके बीचकी बात हो तो अपने साथ न्याय करें। दो इज़्मोंके बीचकी बात हो तो दो मज़हबोंके बीचकी बात हो तो और यदि हम स्वयं अपने-अपने साथ न्याय करना आरम्भ कर दें तो राष्ट्रीयता आपके जीवनमें अवश्य ही मूर्तिमान् होकर अवतरित हो जायगी और जिस समय राष्ट्रीयता आपके जीवनमें आ जायगी, आप राष्ट्र ही नहीं, राष्ट्रपति बननेके सच्चे अधिकारी हो जायँगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, किंतु मेरे भाई, आज दशा तो यह है कि कानून किताबमें रहता है और डिपार्टमेण्ट बढ़ते चले जाते हैं तथा काम गलत होते जाते हैं। मेरा नम्र निवेदन केवल इतना ही था कि मानव-सेवा-संघका प्रादुर्भाव समाजकी व्यथासे हुआ और जिसका प्रादुर्भाव व्यथासे हुआ, उसने यह कहा कि 'हे मानव! तू यदि राष्ट्र बनना चाहता है तो अपना राजा बन जा, अपना मिनिस्टर बन जा, अपना जज बन जा। तू जब अपना जज बन जायगा, तब निःसन्देह तेरे जीवनमें निर्दोषता सुरक्षित रहेगी और जिसके जीवनमें निर्दोषता सुरक्षित रहती है, उसकी माँग जगत्को भी होती है, उसकी माँग प्रभुको भी होती है और वह अपनी दृष्टिमें भी अपनेको आदरके योग्य पाता है। निर्दोष जीवनके बिना न हम जगत्के लिये उपयोगी होते हैं, न अपने लिये उपयोगी होते हैं और न प्रभुके लिये ही उपयोगी होते हैं। और वह निर्दोषता केवल राष्ट्रीयताके द्वारा अर्थात् अपने प्रति न्याय करनेसे प्रत्येक भाईको, प्रत्येक बहनको प्राप्त हो सकती है।' [प्रेषिका—सुश्री अर्पिताजी]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

उपदेशक या गुरु कैसे हों ?

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तरमें निम्नलिखित निवेदन है।

उपदेशक, गुरु या वक्ता होना बड़े दायित्वका काम है। योग्य अधिकारी ही इन पदोंको सुशोभित कर सकते हैं। अधिकारी वे हैं, जिनमें ये पाँच बातें अवश्य हों—

(१) वे जिस सिद्धान्तका उपदेश करते हैं, वह सिद्धान्त सच्चा हो, शास्त्रानुकूल हो और लोकल्याणकारी हो।

(२) वे स्वयं उस सिद्धान्तको सिद्धान्तरूपसे जानते हों।

(३) उक्त सिद्धान्त उनके जीवनमें उतरा हो।

(४) उपदेश करनेमें केवल सुननेवालोंके कल्याणकी ही भावना हो, उन्हें रिझानेकी न हो।

(५) उपदेशके बदले पूजा, मान-सम्मान और धनादि भोगोंको प्राप्त करनेकी कामना न हो।

इनमेंसे एक-एकपर संक्षिप्त विचार कीजिये।

(१) जैसे भगवत्प्राप्तिके लिये सत्य, अहिंसा, शम, दम, सेवा, भक्ति, सदाचार आदि साधन करना—यह सिद्धान्त सच्चा भी है, शास्त्रीय भी है और प्रत्यक्ष ही लोक-कल्याणकारी भी है; पर जैसे कोई कहे कि लोगोंको लूट-मारकर, उन्हें धोखा देकर, उनका अहित करके जगत्का हित करना है और इस सिद्धान्तको कोई सच्चा शास्त्रीय और लोककल्याणकारी सिद्ध करना चाहे तो वह ठीक नहीं है। जिससे परिणाममें किसीका अहित होता हो, वह सिद्धान्त न सत्य है, न शास्त्रीय है और न लोककल्याणकारी है। सिद्धान्त वही सच्चा है, जो साधन करनेपर खरा उतरे, जो ऋषि-मुनियोंके द्वारा सेवित हो और जिसके द्वारा होनेवाला लोककल्याण प्रत्यक्ष हो।

(२) कोई उपदेशक सत्यका, भगवान्का प्रतिपादन करता है, पर स्वयं उनको नहीं मानता—यह ठीक नहीं है। एक बार एक सज्जन आये, थे वे बड़े विद्वान्। उनके व्याख्यानकी व्यवस्था हुई। व्याख्यान आरम्भ करनेके पहले उन्होंने पूछा—'कहिये क्या कहें—ईश्वरका खण्डन करें या मण्डन।' उनसे कहा गया, 'जो सच्चा सिद्धान्त हो, उसीका प्रतिपादन कीजिये।' उन्होंने कहा—'मेरा सिद्धान्त तो यही है, जैसा मंच (प्लेटफार्म), वैसा भाषण। मैं कुछ मानता-वानता नहीं, व्याख्यान आप कहें, उसी विषयपर दे दूँ।' यह ठीक नहीं है। उपदेशक या वक्ताको वस्तुतः उसी विषयपर बोलना चाहिये, जिसको वे स्वयं सिद्धान्तरूपसे मानते हों।

(३) सिद्धान्तका मानना ही पर्याप्त नहीं है, उसको जीवनमें उतार लेना आवश्यक है। जो कुछ कहे, वही करे। वैसे उपदेशकको बहुत समझाना नहीं पड़ता। उसका जीवन ही मूर्तिमान् उपदेश होता है। उसको देखकर ही लोग समझ लेते हैं और व्याख्यानकी अपेक्षा बहुत अच्छा समझते हैं। इसके विपरीत एक आदमी, जो सत्यपर बड़े महत्त्वका भाषण देता है, मद्यपानको महान् पाप सिद्ध करता है, पर अलग जाते ही बात-बातमें झूठ बोलता है और शौकसे शराब पीता है, उसके भाषणका कोई भी महत्त्व नहीं, कुछ भी मूल्य नहीं।

(४) वक्ताका उद्देश्य होना चाहिये लोककल्याणकारी सत्य सिद्धान्तके उपदेशद्वारा लोककल्याण करना। वह श्रोताके सामने सिद्धान्तकी महत्ता बतलाता है और साथ ही अपना अनुभव भी उनको प्रकारान्तरसे बतलाता है। जैसे किसी रोगीको, कोई उसी रोगसे छूटा हुआ पुरुष अपनी अनुभूत चिकित्साका उपदेश करे और मैंने उसका कैसे-कैसे उपयोग करके क्या-क्या लाभ उठाये, यह भी बताये और यह सब उसके रोगका नाश करनेके लिये ही करे। सच्चा उपदेशक दूकान नहीं खोलता। वह तो सच्चे जिज्ञासुके सामने उसके कल्याणार्थ सरलताके साथ अपनी अनुभूत साधनाका व्याख्यान करता है। उसके

मनमें कभी यह कल्पना ही नहीं होती कि मैं अपने भाषणसे किसीको रिझाकर अपनी ओर आकृष्ट करूँ।

(५) ऐसे व्याख्यानदाता, उपदेशक, कथावाचक, गुरु देखे जाते हैं, जो बहुत सुन्दर स्वरोंमें गाते हैं, नाचते हैं, आँसू बहाते हैं, मूर्छित-से होकर गिर पड़ते हैं, बड़ी सुन्दर कथा कहते हैं, जनताको रुला देते हैं, हँसा देते हैं, बड़ी सुन्दर साहित्यिक आलोचना करते हैं, परंतु इन सबका लक्ष्य रहता है—किसी प्रकार जनताको रिझाना और फिर उससे पूजा, धन, मान आदि प्राप्त करना। कथामें अतिउच्च दिव्य प्रेमका निरूपण करते हैं, परंतु पाये जाते हैं घृणित कामके कीड़े; वैराग्य, त्याग और जगत्की असत्ताका निर्वचन करते हैं। कहते हैं—'कभी जगत् बना ही नहीं; बिना ही हुए सीपमें रजतकी भाँति, आकाशमें तिरमिरेकी भाँति भास रहा है। और दूसरे ही क्षण येन-केन प्रकारेण धनादिके संचयमें लग जाते हैं तथा एक-एक पैसेके लिये भाई-भाईसे लड़ने लगते हैं। तुलसीदासजीने ऐसे ही लोगोंके लिये कहा है—

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥

गुरु चरित्रवान् हो, विद्वान् हो, अनुभवी हो तभी वह भगवान्के मार्गका पथ-प्रदर्शक बन सकता है। नहीं तो अन्धेको अन्धा ले जाय और गड़हेमें डाल दे, इसी तरह वह भी अपने अनुयायीको गड़हेमें ही डालता है।

संगीत, नृत्य, वक्तृत्व, नाट्य आदि कलाओंसे ही कोई महात्मा नहीं हो जाता। नाटकोंके दुश्चरित्र अभिनेता भी बहुत अच्छे-अच्छे श्रीकृष्ण, शंकराचार्य, बुद्ध, चैतन्य महाप्रभु, मीरा आदिके पार्ट करते हैं तथा बहुत सुन्दर करते हैं। परंतु इससे उनका अपना कोई लाभ नहीं होता और वे बेचारे इसे स्पष्ट अभिनय कहते हैं। इससे जनताको भी धोखा नहीं होता। पर जो करते तो हैं केवल नाट्य और उसे दिखाते हैं असली रूपमें—ऐसे दम्भपूर्ण वक्ताओं, गुरुओं और उपदेशकोंसे बड़ी हानि होती है; क्योंकि उनसे भोले-भाले लोग ठगे जाते हैं और फलतः सत्य-सिद्धान्तमें अविश्वासी होकर पतनोन्मुख हो जाते हैं।

अतएव वक्ता, उपदेशक और गुरुओंमें उपर्युक्त पाँचों बातें आनी चाहिये, तभी वे उपदेश करनेके अधिकारी होते हैं, तभी उनके उपदेशका प्रभाव पड़ता है और तभी उनके द्वारा लोककल्याण होता है।

आप उपदेशकका कार्य करना चाहते हैं तो पहले अपनेको उसका अधिकारी बना लीजिये। उपदेश करना केवल पेशा नहीं होना चाहिये।

(२)

भगवान् शिव और राम एक हैं

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि रामायणका यह कथन सर्वथा सत्य है कि शिवद्रोही रामभक्त अथवा रामद्रोही शिवभक्त नरकमें पड़ते हैं। साथ ही 'कल्याण' का यह लेख भी ठीक है, जिसमें एक देवताकी ही अनन्य उपासनापर जोर दिया गया है। इन दोनोंमें कोई विरोध नहीं है। केवल श्रीराम और श्रीशिवके प्रति विरोधका निषेध किया गया है। किसी एक स्वरूपकी उपासनाका यह अर्थ नहीं कि वह दूसरे स्वरूपसे द्रोह करे; क्योंकि दूसरे सभी स्वरूप भी उसी भगवान्के हैं, जिसकी वह उपासना करता है। यदि कोई हमारे एक पैरपर फूल चढ़ाये और दूसरेपर बर्छी मारे तो क्या हम उसपर प्रसन्न होंगे? एक सज्जन सरकारी अफसर भी हैं और ब्राह्मण भी हैं। अब कोई ब्राह्मण-स्वरूपकी पूजा करे और सरकारी अफसर-स्वरूपपर डंडा चलाये तो क्या इससे वे प्रसन्न होंगे? इसी प्रकार भगवान्के एक स्वरूपसे प्रेम और दूसरेसे वैर रखनेवाला वास्तवमें भगवान्से प्रेम करता ही नहीं। ऐसे प्रेमीके प्रेमसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। अतः भगवान् विष्णु या शिवमेंसे किसी एकके प्रति अनन्य भक्ति रखते हुए भी दूसरेकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, बल्कि यही समझना चाहिये कि वह भी मेरे ही भगवान्का रूप है। यही रामायण और 'कल्याण' का अभिप्राय है। शेष भगवत्कृपा

कृपानुभूति

'राम कृपाँ नासहिं सब रोगा'

यह एक सच्ची घटना है। मैं भिण्ड जिलेका निवासी हूँ। मेरे पेटके दाईं ओर काफी दर्द रहता था। करीब पाँच वर्षसे मैं परेशान था। कई बार चेक करानेपर डॉक्टरद्वारा बताया गया कि गॉलब्लेडर (पित्ताशय)-में पथरी है। मैं डायबिटीजका मरीज होनेकी वजहसे ऑपरेशन करानेसे घबरा रहा था और इसीलिये ऑपरेशन नहीं करा रहा था। जब दर्द काफी बढ़ गया तो ग्वालियर जाकर परीक्षण कराकर ऑपरेशन करानेकी सोची तो डॉक्टरने करीब पच्चीस हजार रुपयोंका खर्च बताया। मैं खर्च वहन करनेमें असमर्थ था। जैसे-तैसे ईश्वरपर भरोसाकर ऑपरेशन करानेका निर्णय लिया। सभी प्रकारकी जाँच एवं परीक्षणके बाद २० अक्टूबर २००४ ऑपरेशनकी तारीख निश्चित हुई। मैं पैसोंके लिये परेशान था, तभी मेरी पत्नीने कहा कि मेरी बुआका लड़का लखनऊमें मेडिकल कॉलेजमें सर्जन है, उससे सलाह ले ली जाय। मैंने तभी लखनऊ फोनपर बात की। बात होनेपर उसने सभी रिपोर्टोंकी जानकारी ली और खर्चके बारेमें पूछा। मैंने बताया कि यहाँ खर्च करीब पच्चीस हजार आ रहा है। तब उसने मुझे उसी वक्त कहा कि आप शीघ्र लखनऊ आ जायँ, मैं यहाँ ऑपरेशन करवा दूँगा। मैं एवं मेरी पत्नी दिनांक २४ अक्टूबर २००४ को लखनऊ पहुँच गये। २६ अक्टूबर को वहाँ टेस्ट हुए एवं ऑपरेशनकी तारीख २८ अक्टूबर तय की गयी। हॉस्पिटलमें ही दूरबीनसे ऑपरेशन करनेका निर्णय लिया गया। मैंने ऑपरेशन टेबलपर जानेके लिये कपड़े बदल लिये, परंतु उसी वक्त डॉक्टरने कहा कि दूरबीन मशीन कार्य नहीं कर रही है। मैं ऑपरेशनकी टेबलसे वापस कर दिया गया। काफी प्रयासके बाद भी ऑपरेशन नहीं हो सका। मेरे साले जो कि सर्जन थे, उन्होंने प्राइवेट नर्सिंग होममें ऑपरेशन करनेका निश्चय किया। मुझे उसी दिन सायंकाल कृष्ण मेडिकल सेण्टर ले जाया गया। वहाँपर मेरा ऑपरेशन मेरे साले एवं एक सर्जनके द्वारा किया गया। ऑपरेशनके बाद मेरा ब्लडप्रेशर हाई हो गया और चेतना नहीं लौटी। मेरी पत्नी ऑपरेशन-थिएटरके बाहर इन्तजार कर रही थी। उसी वक्त मेरे सालेने बाहर आकर मेरी पत्नीसे पूछा कि क्या जीजाजीको ब्लडप्रेशर था? पत्नीने बताया कि नहीं। उधर मेरी चेतना लुप्त होती जा रही थी। मेरे सालेको कोई उम्मीद नहीं दिख रही थी। अन्य रिश्तेदारोंको भी उसने मोबाइलद्वारा सूचित किया कि मैं परेशान हूँ, मैंने जीजाजीको यहाँ बुलाकर क्या किया! मेरी पत्नी अपने भाईकी घबराहटको समझ गयी और उसने सच्चे मनसे देवी माँको याद किया और कहा कि हे माँ, मैंने सच्चे मनसे तेरी सेवा की है तो मेरी विपदा हरो। देवीचालीसाका पाठ जो कि हमेशा करती है, वह करने लगी। उसी समय मुझे आई०सी०यू०में ऑक्सीजनपर लाया गया। मेरी पत्नी वहाँ मौजूद थी, परंतु वह मेरे पास बैठी केवल देवी-चालीसाका स्मरण कर रही थी, साथ ही रामायणकी चौपाई ***'राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा।'*** की भी रट लगाये हुई थी, सभी डॉक्टर खड़े थे। पत्नीको कोई सुध नहीं थी। वह तो एक रटसे चौपाई एवं देवीचालीसाका पाठ कर रही थी। ऑपरेशन छः बजे शाम हुआ था। करीब ११ बजे रात्रिमें मुझे चेतना लौटने लगी, तब मेरे कानोंमें मन्दिरकी घण्टी एवं देवीचालीसा तथा रामायणकी चौपाई सुनायी दी और चेतना फिर गायब हो गयी। बादमें डॉक्टरने ऑक्सीजन हटा दी एवं फिर करीब १२ बजे रात्रिको मुझे होश आ गया तो सबसे पहले मेरा पुत्र मेरे सामने खड़ा था। मेरी चेतना लौटते ही वह रो पड़ा एवं ईश्वरको नमन करने लगा। मैंने उससे कहा कि क्यों रो रहे हो, मैं तो ठीक हूँ। दूसरे ही दिन मेरे साले साहब मुझे अपने घर ले गये। करीब आठ दिन रुकनेके बाद मैं भिण्ड वापस आ गया। इस घटनासे मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि देवी माँ एवं रामायणकी उपर्युक्त चौपाईका स्मरण अगर सच्चे मनसे किया जाय तो इसमें कोई शंका नहीं है कि पूर्णरूपसे विपत्ति दूर हो जायगी। ईश्वरकी कृपासे सब सम्भव है।

—महेशप्रसाद श्रीवास्तव

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बाँसुरीवाला

मैं मुम्बई शहर जब भी जाता हूँ, तब पैडररोड जसलोक अस्पतालके पास मुड़नेपर नैरोजी डाबरिया रोड आती है, जहाँपर मोहनी महल नामक स्थानपर मैं रुकता हूँ। वहाँपर सामनेसे प्रतिदिन सुबह छः बजेके लगभग एक नेत्रहीन व्यक्ति बाँसुरी बजाता हुआ निकलता है। वह बाँसुरी बजाते हुए बड़े ही मधुर स्वरमें भजन गाता जाता है।

मैंने जब पता किया तो मालूम हुआ कि वे एक कुलीन परिवारके व्यक्ति हैं, एक दुर्घटनामें दुर्भाग्यवश उनकी आँखें जाती रहीं। उनके अपने ही भाई-बन्धुओंने कपटपूर्वक उनका सब कुछ हथिया लिया और उन्हें बेघर कर दिया। अब जो कुछ थोड़ा बचा था, उसे लेकर वे मुम्बई आ गये। वहाँ एक चालमें एक छोटेसे कमरेमें वे रहते हैं। इसी बाँसुरीवादनसे ही उनका जीवन चल रहा है। प्रतिदिन प्रातःकाल भ्रमण करना उनके बचपनकी आदत है। दुनियामें ईश्वरके अतिरिक्त उनका कोई नहीं बचा था, उसका ही स्मरण वे हमेशा किया करते हैं।

मैंने उनसे कहा कि मुझे आपके भजन बहुत ही प्रिय लगते हैं, मैं उन्हें कभी पूरा नहीं सुन पाता। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आप थोड़ा रुककर मुझे एक भजन सुना दें। उन्होंने मेरे अनुरोधपर जो भजन सुनाया, वह इस प्रकार है—

मन प्रभु दर्शन को तरसे।
विरह वियोग श्याम सुंदर के झर-झर आँसू बरसे।
इन अँसुवन से चरण तुम्हारे धोने को मन तरसे॥
काल का पहिया चलता जाये तू कब मुझे बुलाये।
नाम तुम्हारा रटते-रटते ही यह जीवन जाये॥
मीरा को नवजीवन दीनो केवट को आशीस।
शबरी के बेरों को खाकर तृप्त हुए जगदीस॥
जीवन में बस यही कामना दरस तुम्हारे पाऊँ।
गाते-गाते भजन तुम्हारे तुम में ही खो जाऊँ॥

ईश्वरके प्रति उनकी यह भक्ति और समर्पण देखकर सहज ही यह समझमें आ गया कि वे वेशभूषासे भले ही सामान्य नागरिक दिखते हैं, परंतु वे अपने-आपमें एक संत हैं। मुझसे उम्रमें काफी बड़े हैं, इसलिये मैंने उनसे आशीर्वाद लिया। उसके बाद जब-जब भी मैं मुम्बई जाता हूँ, उनसे अवश्य मिलता हूँ; क्योंकि आँखें न होनेपर भी वे बाँसुरीवादनकर अपनी आजीविका स्वयं चलाते हैं—इस अर्थमें उनका जीवन प्रेरणादायी है। प्रत्येक व्यक्ति उनसे आत्मनिर्भरताकी प्रेरणा लेकर अपने जीवनको सार्थक बना सकता है।—राजेश माहेश्वरी

(२)

रिक्शाचालकका मन-परिवर्तन

सन् २००५ ई० के मई माहका एक गर्म दिन। मैं अपने निवास-स्थानके बाहर सड़कपर खड़े होकर एक्यूप्रेशर हॉस्पिटल जानेके लिये रिक्शेका इन्तजार कर रहा था। मेरी आदत है कि मैं रिक्शेपर बिना भाड़ा पूछे नहीं बैठता। इतनेमें एक रिक्शावाला आया, भाड़ा पूछनेपर उसने १२ रुपये माँगे। मेरे निवाससे एक्यूप्रेशर हॉस्पिटलका उचित रिक्शाभाड़ा उस समय १५ रुपये था और प्रायः मैं १५ रुपये ही दिया करता था। मैं रिक्शेपर बैठ गया और उससे कहा कि तुमने १२ रुपये माँगे हैं, परंतु मैं हॉस्पिटल जानेके लिये अक्सर १५ रुपये दिया करता हूँ तो तुम्हें भी १५ रुपये ही दूँगा।

थोड़ी दूर जानेपर रिक्शेवाला कहने लगा—'बाबूजी! मैं पिछले दो महीनोंसे रिक्शा चला रहा हूँ, लेकिन आप पहली सवारी हैं, जो १२ रुपये माँगनेपर १५ रुपये देनेकी बात कह रहे हैं।' मैं नहीं चाहता था कि रिक्शा चलाते समय वह मुझसे बात करे, इसलिये उसकी बातको अनसुना करते हुए, मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। लगभग २० मिनट बाद हम हॉस्पिटल पहुँचे।

मैंने रिक्शेवालेको १५ रुपये दिये। रुपये देते समय मैंने उसकी हथेलीपर तम्बाकू खानेका निशान देखा।

न जाने किस ईश्वरीय प्रेरणासे मैंने रिक्शेवालेकी पसीनेसे भींगी हुई कमीजपर पीठकी ओर हाथ रखा और कहा—'तुम इतनी मेहनत करके, अपना पसीना बहाकर अपनी जीविका कमाते हो, इसे (तम्बाकू) छोड़ दो।' रिक्शावाला समझ गया था कि मैं तम्बाकूके लिये कह रहा हूँ। वह बोला—'बाबूजी! यह नुकसान करता है क्या?' उत्तरमें 'हाँ' कहते हुए बातको यहीं समाप्त करके मैं हॉस्पिटल गेटसे अन्दर चला गया।

लगभग तीन माह बाद एक्यूप्रेशर हॉस्पिटल जाते समय वही रिक्शावाला मुझे पुनः मिला। शायद उसने मुझे पहचान लिया था, परंतु मैं उसे पहचान नहीं पाया।

हॉस्पिटल पहुँचनेपर भाड़ेके रुपये लेनेके बाद कृतज्ञभावसे उसने मेरे पैर पकड़ लिये और बोला—'बाबूजी! मुझे पहचाना नहीं, करीब तीन महीने पहले आप मेरे रिक्शेपर आये थे, मेरे १२ रुपये माँगनेपर भी आपने मुझे १५ रुपये दिये थे तथा मुझे तम्बाकू खानेके लिये मना किया था।'

रिक्शेवालेने अपने दोनों हाथ जोड़कर कातर स्वरमें कहा—'बाबूजी! उस दिन आपके जाते ही मैंने अपनी जेबमें रखे हुए गुटखेकी दो पुड़िया नालीमें फेंक दी थी और विश्वास मानिये, उसके बाद आजतक मैंने तम्बाकूको हाथ नहीं लगाया।' मैंने देखा रिक्शावालेकी आँखें नम थीं, उनमें मेरे प्रति श्रद्धाका भाव उमड़ रहा था।

मेरी आँखोंसे खुशीसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, ये मेरे नेत्रोंसे निकले हुए वे मोती थे, जिन्हें एक रिक्शावाला अपनी झोलीमें भर रहा था। मुझे लगता है कि इस प्रकारके गरीब मजदूर-श्रेणीके लोग जानकारी न होनेके कारण दुर्व्यसनोंके शिकार हो जाते हैं, वे घृणा नहीं, सहानुभूतिके पात्र हैं; उनसे थोड़ा-सा प्रेमभरा व्यवहार उनकी सोचको बदल सकता है।—श्यामसुन्दर सराफ

(३)

चोरके प्रति भी सद्भावना

गुजरातके सौराष्ट्र प्रान्तमें मोरषी नामका शहर है। इस शहरमें वर्षों पहले शास्त्रपुराणादिके प्रकाण्ड विद्वान् कथाकार श्रीशंकरलाल शास्त्रीजी शुद्ध ब्राह्मण रहते थे। वे शास्त्र-पुराणादिके निष्णात विद्वान् तो थे ही, साथ-ही योगादिमें भी निष्णात थे।

उनमें विद्वत्ताके साथ त्याग, वैराग्य भी था। एक दिन वे अपने घरके पहले तल्लेकी अटारीमें बैठकर शास्त्रादिका चिन्तन-मनन कर रहे थे।

नीचेके तलमें घरवाले रहते थे, वे सब बाहर गये हुए थे। इस मौकेका लाभ उठाकर एक चोर उनके यहाँ चोरी करने आया। शास्त्रीजी ऊपरसे देख रहे थे, फिर भी कुछ न बोले। थोड़ी देरके बाद चोरको कुछ न मिला, इसलिये खाली लोटा लेकर जाने लगा। शास्त्रीजीने चोरको बुलाकर रोका, शास्त्रीजी ऊपरसे नीचे आये। चोरको शान्त-चित्त, प्रसन्न, त्यागमूर्ति शास्त्रीजीका भय तो था ही नहीं। शास्त्रीजीने चोरके हाथसे खाली लोटा ले लिया, उसमें शुद्ध घी भरा और अन्य खाद्य पदार्थ देकर उसे हँसी-खुशी विदा कर दिया। ऐसे थे कथाकार श्रीशंकरलाल शास्त्री, जिनकी चोरके प्रति भी सद्भावना थी।

कहा जाता है कि शास्त्रीजीने गांधीजीके धर्ममार्गदर्शक शतावधानी श्रीराजचन्दजीको भी योगके बारेमें सिखाया था।—रतिभाई पुरोहित

(४)

पितृभक्ति

बाबू नेमीचन्दजी आंचलिया गांधीजीके बड़े भक्त थे। स्वयंके हाथोंसे काते हुए सूतसे बुने कपड़ेका ही उपयोग करते थे। स्वाधीनता संग्रामके दौरान उन्होंने कई बार विचारोत्तेजक लेख लिखे, जिसके कारण

उन्हें सात सालके कठोर कारावासकी सजा मिली। उनका एक पुत्र और एक ही पौत्र था, नौगाँव (असम)-में कपड़ेकी साधारण-सी दुकान थी। उन्होंने बूढ़े बापको सरदारशहरमें एक दिन भी अकेला नहीं छोड़ा। बेटेके सरदारशहर पहुँचनेके बाद पोता असम जाता और तीन-चार महीनेके बाद फिर अदल-बदल होती। उन दिनों चार-पाँच दिन तो सरदारशहरसे असमतक आने-जानेमें लग जाते थे। बीचकी अवधिमें दुकानको बन्द करके ही आना-जाना होता था। मैने श्रीनेमीचन्दजीके पुत्रसे पूछा कि भाई! आपको हर चार-छह महीनेपर दुकान बन्द करनी पड़ती है, इससे पुराने ग्राहक भी छूट जाते होंगे। उन्होंने बड़ी विनम्रतासे कहा, ग्राहक तो नये भी बन जायँगे, पर बाप-दादा बार-बार मिलनेवाले नहीं हैं। यदि बाप-बेटामें-से कोई भी मौजूद नहीं रहे और पिताजीका शरीर छूट जाय तो इससे बड़े कलंक और पश्चात्तापकी बात और क्या होगी?

आजके समयमें भी इस प्रकारकी पिता एवं दादाकी भक्त सन्तानें मौजूद हैं, स्मरणकर बहुत हर्ष होता है।—नन्दलाल टाँटिया

(५)

पराया सुख अपना सुख

बात उस समयकी है, जब मैं सातवीं कक्षाकी छात्रा थी। माँको संग्रहणी रोग हो गया था। इस रोगसे मुक्तिके लिये वैद्यराजने उनको छाछका सेवन करनेके लिये कहा। माँने उनके परामर्शानुसार छाछका सेवन शुरू कर दिया। इस प्रकारका इलाज 'कल्प' कहलाता था और इसकी निश्चित अवधि होती थी, तीन या चार माह, इससे अधिक नहीं।

इस कल्प-अवधिमें दीपावली पर्व आया। माँने प्रतिवर्षकी भाँति अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ, गुझिया, मूँगकी तथा चनेकी बर्फी, बेसनके लड्डू, मीठे शकरपारे, नमकीन, खाजा, समोसा आदि तथा इसके अलावा तीन प्रकारकी पूरी, मीठी-नमकीन कचौड़ी, तीन प्रकारके रायते, अनेक प्रकारकी सब्जियाँ, दहीबड़े आदि बनाये। शामको भगवान्‌का भोग लगाया, आरती की। लगभग पचास व्यक्ति इस प्रसादका दर्शन करके प्रसाद पानेके लिये बैठ गये। प्रसाद पाकर दर्शनार्थी अपने निवासको लौट गये। तत्पश्चात् माँने छाछका भोग लगाकर मात्र छाछका सेवन किया।

मैंने बालसुलभ जिज्ञासासे माँसे पूछा—'माँ! तुम इन पकवानोंको नहीं खाओगी?' माँने कहा—'नहीं'। मैंने फिर पूछा—'तुम्हारा इन सबको खानेका मन नहीं हो रहा?' उन्होंने कहा—'मुझे तुम सबको खाते देखकर तृप्तिका अनुभव हो रहा है, मेरे मुँहमें इन सब पकवानोंका स्वाद आ गया है', पर मेरे बालमनने इसको स्वीकार नहीं किया।

वर्ष १९९२ ई० में मैं कैंसर रोगसे पीड़ित हुई। लगभग दो माहसे कुछ भी खानेको नहीं मिल रहा था। एक दिन मेरा मन समोसा खानेको हुआ। चिकित्सकीय निर्देशानुसार मैं समोसा खा नहीं सकती थी, पर मन समोसा खानेको अत्यधिक लालायित हो रहा था। माँकी बात याद आ गयी और तुरन्त दो समोसे मँगाये। समीप रहनेवाली नर्सकी बेटीको बुलाकर समोसे खिलाये। उस बालिकाके चेहरेकी भावभंगिमाको देखकर मैं मन-ही-मन उन समोसोंका स्वाद ले रही थी और जब बालिकाने कहा—'आण्टी! समोसे बहुत बढ़िया मँगाये, समोसे खाकर आनन्द आ गया।' यह वाक्य सुनकर मुझे उसी तरहकी अनुभूति हुई, जैसे मैंने ही वह समोसे खाये हों।

यह प्रसंग इस त्यागकी ओर संकेत करता है कि यदि आप प्रसन्न और सन्तुष्ट होना चाहते हैं तो दूसरोंको प्रसन्न करें, सन्तुष्ट करें। यही दैवीय गुण भारतीय संस्कृतिका मूल आधार है।—डॉ० श्रीमती कृष्णा माहेश्वरी

मनन करने योग्य

परस्त्रीमें आसक्ति—मृत्युका कारण

एक समय धर्मराजके पास एक राक्षस आया और 'मैं समस्त शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और मन्त्रविद्यामें कुशल ब्राह्मण हूँ।' ऐसा कहकर वह सर्वदा पाण्डवोंके धनुष और तरकस तथा द्रौपदीको उड़ा ले जानेकी ताकमें उन्हींके पास रहने लगा। उस दुष्टका नाम जटासुर था। एक समय भीमसेन वनमें गये हुए थे तथा लोमशादि महर्षिगण स्नान करने चले गये थे। उस समय जटासुर



भयानक रूप धारणकर तीनों पाण्डवों, द्रौपदी और सारे शस्त्रोंको उठाकर ले चला। उनमेंसे सहदेव किसी प्रकार पराक्रम करके छूट गये और उस राक्षससे अपनी कौशिकी नामकी तलवार छीनकर जिस ओर भीमसेन गये थे, उस ओर आवाज लगाने लगे।

फिर जिन्हें राक्षस हरे लिये जाता था, उन धर्मराज युधिष्ठिरने उससे कहा, 'रे मूर्ख! इस प्रकार चोरी करनेसे तो तेरे धर्मका नाश होता है, तू इसका कुछ भी विचार नहीं करता। अरे! जिनका अन्न खाया हो और जिन्होंने आश्रय दिया हो, उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये। तू वृथा क्यों मरना चाहता है? अरे राक्षस! आज तूने इस मानवीका स्पर्श क्या किया है, मानो घड़ेमें रखे हुए विषको ही हिलाकर पिया है।'

ऐसा कहकर युधिष्ठिर उसके लिये भारी हो गये, उनके भारसे दबकर उसकी गति उतनी तेज नहीं रही। तब धर्मराजने नकुल और द्रौपदीसे कहा, 'तुम इस मूढ़ राक्षससे डरो मत, मैंने इसकी गतिको कुण्ठित कर दिया है। यहाँसे थोड़ी ही दूरपर महाबाहु भीमसेन होगा। बस, अब वह आता ही होगा, फिर इस राक्षसका कहीं नाम-निशान भी नहीं रहेगा।'

युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे कि अकस्मात् वज्रधारी इन्द्रके समान गदाधारी भीमसेन आते दिखायी दिये। उन्होंने देखा कि राक्षस उनके भाइयों और द्रौपदीको लिये जाता है। यह देखकर वे क्रोधसे भर गये और उस राक्षससे बोले, 'रे पापी! मैंने तो तुझे पहले ही शस्त्रोंकी परीक्षा करते समय पहचान लिया था। किंतु तू हमारे यहाँ ब्राह्मणवेषमें रहता था, इसलिये मैं तुझे कैसे मारता? मालूम होता है आज तेरी मौत आ गयी है, इसीसे तुझे ऐसी कुबुद्धि उपजी है। अवश्य अद्भुतकर्मा कालने ही तुझे कृष्णाको हरण करनेकी बात सुझायी है। अब तू जहाँ जाना चाहता है, वहाँ नहीं जा सकता; बल्कि तुझे बक और हिडिम्बके रास्तेसे जाना होगा।'

भीमसेनके ऐसा कहनेपर कालकी प्रेरणासे वह राक्षस डर गया और उन सबको छोड़कर वह युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया।

जिस प्रकार पहले वाली और सुग्रीवका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार इन दोनोंका भी वृक्षयुद्ध होने लगा, जिससे वहाँके अनेकों वृक्ष उजड़ गये। उन्होंने वज्रके समान वेगवाली शिलाओंसे लड़ना आरम्भ किया। अन्तमें वे आपसमें एक-दूसरेपर घूँसोंकी वर्षा करने लगे। इस समय भीमसेनने जटासुरकी गर्दनपर बड़े वेगसे मुक्का मारा। उससे वह राक्षस बहुत ढीला पड़ गया। उसे थका हुआ देख भीमसेनने पृथ्वीपर दे मारा और उसके सारे अंग चूर-चूर कर दिये। फिर कोहनीकी चोटसे उसका सिर धड़से अलग कर दिया। इस प्रकार परनारीके प्रति आसक्ति उसकी मृत्युका कारण बनी। [महाभारत-वनपर्व]

श्रावणमासमें बिक्रीवाली प्रमुख पुस्तकें

नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [सजिल्द] (कोड 592) पुस्तकाकार— मानव-जन्मको सफल करनेके लिये मानवमात्रको नित्यकर्म नियमित रूपसे करने चाहिये। इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर शौचाचार, आभ्यन्तर शौच, दन्तधावनविधि, क्षौरकर्म, स्नान, सन्ध्योपासन, जप, तर्पण, ब्रह्मयज्ञ, बलिवैश्वदेव आदि पञ्च महायज्ञोंका विवेचन, देवपूजन, मानसपूजा, सूर्यनमस्कार, नित्यदान, संकल्पविधि, अतिथिसत्कार, भोजन-विधि, शयन-विधान, नित्यस्मरणीय स्तोत्रोंके संकलनसे यह पुस्तक सबके लिये उपयोगी तथा संग्रहणीय है। मूल्य ₹७०

शिवमहापुराण [मूल-पाठ] (कोड 2020)—इसमें शिवमहिमा और लीला-कथाओंके अतिरिक्त पूजा-पद्धति, अनेक प्रेरणाप्रद आख्यान तथा शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन किया गया है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹२७५

शिवस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1417) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भक्तोंके लिये उपयोगी भगवान् शिवके विभिन्न स्तोत्रों, स्तुतियों, सहस्रनाम तथा आरती आदिका सुन्दर संकलन किया गया है। मूल्य ₹३५

श्रीसत्यनारायणव्रत-कथा-श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रसहित (कोड 1367) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजन-विधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धृत सत्यनारायणव्रत-कथाको भावार्थसहित दिया गया है। मूल्य ₹१५

रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद (कोड 1627) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें रुद्राष्टाध्यायीके मन्त्र, उनका हिन्दी-अनुवाद, संकल्प, गौरी-गणेश-पूजन, शिव-पूजन, ध्यान, उत्तर-पूजन, आरती, क्षमा-प्रार्थना आदि संगृहीत हैं। मूल्य ₹३०

श्रावणमास-माहात्म्य [सानुवाद] (कोड 1899)—इसमें सोमवार आदि प्रत्येक दिनके व्रतोंके सुन्दर विवेचनके साथ मंगलागौरी, स्वर्णगौरी, दूर्वागणपति, संकटनाशन, नागपंचमी, रक्षाबन्धन आदि व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। मूल्य ₹४०

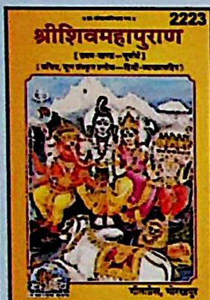
गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2123	श्रीशिवमहापुराण [पूर्वार्ध] सटीक	३००	44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२८०
2124	श्रीशिवमहापुराण [उत्तरार्ध] ,,	३००	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण	२००
26,27	श्रीमद्भागवत-महापुराण ,,	५६०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण	३५०
557	श्रीमत्स्यमहापुराण ,,	३००	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१४०
48	श्रीविष्णुपुराण ,,	१५०	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	१००
1432	श्रीवामनपुराण ,,	१५०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण	१७५
1131	श्रीकूर्मपुराण ,,	१५०	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण	१२०
1985	श्रीलिङ्गमहापुराण	२२०	631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण	२३०
	केवल हिन्दीमें		584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण	१८०
1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)	२२५		सम्पूर्ण सेट एक साथ मँगवानेपर ₹३८०० छूटके बाद देय होगा।	

नोट—गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त पुराण सम्पूर्ण पुराणके हिन्दी भाषामें भावानुवाद हैं। केवल कुछ विस्तृत प्रसंगोंको संक्षिप्त किया गया हो सकता है। १८ महापुराणोंमें ब्रह्माण्डपुराण गीताप्रेससे प्रकाशित नहीं हुआ है।

प्र० ति० 20-05-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

इसी मासमें उपलब्धि संभावित



श्रीशिवमहापुराण-सटीक, दो खण्डोंमें [सचित्र, मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित] (कोड 2223, 2224)—महापुराणोंके क्रममें श्रीशिवमहापुराणका विशेष माहात्म्य है। श्रीशिवमहापुराणमें कुल सात संहिताएँ हैं—प्रथम खण्डमें विद्येश्वरसंहिता तथा रुद्रसंहिता, द्वितीय खण्डमें शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाससंहिता एवं वायवीयसंहिता है। इनमें शिवभक्तोंके रोचक आख्यानके साथ भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासना, लोकव्यवहार तथा मानव-जीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। इसे दो खण्डोंमें प्रकाशित किया जा रहा है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ६००

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2190	सरल गीता (बँगला)	३०	2192	श्रीमद्भागवतमहापुराणम्-वचनमु (खण्ड-1) तमिल	२३०
2198	भक्त ओ भगवान् (बँगला)	१५	2193	श्रीमद्भागवतमहापुराणम्-वचनमु (खण्ड-2) तमिल	२३०
2195	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (भाग-2) बँगला	२५०	2196	श्रीविष्णुपुराणम्—तमिल	१५०
2194	गीता प्रबोधनी (पुस्तकाकार, गुजराती)	६०			

१२ जून गंगादशहरा एवं १३ जूनको निर्जला एकादशीव्रत है

गङ्गालहरी (कोड 699) पॉकेट साइज—इस पुस्तकमें कलिकल्मषविनाशिनीपुण्यतोया भगवती गङ्गाके स्तोत्रका सानुवाद प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹४

एकादशीव्रतका माहात्म्य [मोटा टाइप] (कोड 1162) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर २६ एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹२५

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9.30 बजेसे 5.30 बजेतक पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2334721, 2331250, 2331251 नम्बरोंपर ही सम्पर्क करें अथवा booksales@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं, अथवा मोबाइल नं० 8604581012 पर SMS अथवा WhatsApp कर सकते हैं।

2. कल्याणके पाठकोंकी सुविधाके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9:30 बजेसे 5.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 (उ०प्र०)